अंक 3
संख्या 4

बृहस्पतिवार
1 मई
सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. मौलिक अधिकारों पर वाद-विवाद 1

भारतीय विधान-परिषद

बृहस्पतिवार, 1 मई, सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई।

मौलिक अधिकारों पर वाद-विवाद—*जारी*

***अध्यक्षः** हम शेष खण्डों पर वाद-विवाद चलायेंगे।

खण्ड 10—स्वतंत्रता के अधिकार

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल** (बम्बई : जनरल): खण्ड 10 इस प्रकार है:—

> ''यूनियन के कानून के आदेशों के विपरीत न जाते हुए नागरिकों को परस्पर या व्यक्तिगत रूप से एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में व्यापार, व्यवसाय और सम्पर्क की स्वतंत्रता होगी।''
>
> ''मगर शर्त यह भी है कि कोई प्रदेश सार्वजनिक व्यवस्था नैतिकता या जन-स्वास्थ्य के हित में या किसी गम्भीर स्थिति की हालत में कानून बनाकर पाबन्दी लगा सकता है।''

पैराग्राफ 2 में से हमने 'युक्तियुक्त' (reasonable) शब्द निकाल दिया है।

> ''मगर शर्त यह है कि इस धारा के किसी आदेश से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेशों से लाये हुए माल पर वही कर और टैक्स लगाने में कोई बाधा नहीं होगी जो उस प्रदेश में पैदा होने वाले माल पर लगते हों।''

यहां ''लगते हों'' के बाद हमने यह शब्द जोड़ने का निश्चय किया है—''और ऐसे नियम एवं शर्तों पर जो भेद-मूलक नहीं हों।''

> ''मगर शर्त यह भी है कि व्यवसाय या महसूल के किसी नियम से एक प्रदेश द्वारा किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेश पर तरजीह नहीं दी जायेगी।''

इस प्रकार यह कुछ परिवर्तन सुझाये गये हैं और बहस को संक्षिप्त बनाने के लिए और सभा का समय बचाने को मैंने इन परिवर्तनों की चर्चा कर दी है जो कुछ बहस के बाद स्वीकृत हुए थे। मैं अब अपना प्रस्ताव रखता हूं।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं खण्ड 10 में यह संशोधन पेश करना चाहता हूं—

> ''खण्ड 10 पैराग्राफ 2 में से 'युक्तियुक्त' (reasonable) शब्द निकाल दिया जाये।''

यहां 'युक्तियुक्त' शब्द कुछ अस्पष्टता ला देता है इसलिए इसकी आवश्यकता नहीं है। मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री के.एम. मुंशी]

''खण्ड 10 के तीसरे पैराग्राफ में यथास्थान यह जोड़ दिया जाये—और ऐसे नियम और शर्त पर जो भेदभाव-मूलक न हों।''

इस व्यवस्था का यह अभिप्राय है कि एक इकाई (प्रान्त) ऐसी चुंगी या कर इस दृष्टि से तो लगा सकती है कि बाहर से मंगाया गया माल उस प्रदेश में बने माल से सस्ता न पड़े। यह न हुआ तो दूसरे प्रदेशों में बने माल से वह देश भर जायेगा। इसी दृष्टि से यह व्यवस्था जोड़ी गई है। इसलिए प्रान्तों को अधिकार होगा कि वह अन्य प्रान्तों से मंगाये गये मालों पर इस दृष्टि से कर लगा सकें कि वह उस प्रान्त के बने माल से सस्ते न पड़ें। पर ऐसा समझा गया कि यह अपूर्ण है। ऐसे भी नियम और शर्तें इस सम्बन्ध में बन सकती हैं जिनसे वहां के माल को तरजीह मिले इसलिए ऐसे नियम और शर्तों के अनुसार, ''जो भेदभाव-मूलक न हो'' शब्द जोड़े गये हैं जिससे ऐसी स्थिति न उत्पन्न हो कि बाहर से मंगाये माल की कीमत जबर्दस्ती बढ़ानी पड़े। इसलिये सारी बात यह है कि कोई भी ऐसा नियम या शर्त नहीं होनी चाहिए जिससे उस इकाई या प्रान्त के बने माल को दूसरे प्रान्तों के माल पर तरजीह मिलती हो।

***श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैंने एक संशोधन की सूचना दी है जिसमें न्यूनाधिक रूप में वही बातें हैं जो श्रीयुत मुंशी अपने वर्तमान संशोधन में रख चुके हैं। पर मेरी राय में भी मुंशी का संशोधन खण्ड में ठीक नहीं बैठता, क्योंकि मेरे संशोधन में यह बात कही गई है कि जब कोई प्रदेश अपनी सीमा के अन्दर बनने वाले माल पर कर लगाने के अलावा और कोई प्रतिबंध लगाता है तो उसे यह क्षमता भी होनी चाहिए कि वह इस बात पर आग्रह कर सके कि बाहर से आने वाले माल भी उन्हीं प्रतिबंधों के आधीन होंगे। उदाहरण के लिए, पैक करने, लेबुल लगाने तथा प्रस्तुत सामान में क्या-क्या चीजें दी गई हैं इसे बताने आदि के सम्बन्ध में नियम और शर्तें हो सकती हैं और इन मामलों में बाहरी प्रदेश के माल को अपने प्रदेश के माल पर सुविधा न मिलनी चाहिए। मिस्टर मुंशी का संशोधन अपने वर्तमान स्वरूप में उन्हीं व्यवस्थाओं और शर्तों के अधीन होगा जो भेदभाव-मूलक न हो। पर संशोधन यह नहीं कहता कि सम्बन्धित प्रदेश को यह अधिकार होगा कि वह बाहरी प्रदेशों के माल पर यही व्यवस्थाएं लागू कर सकेगा इसलिए या तो उनका संशोधन इस खण्ड में ठीक-ठीक जुड़ा होना चाहिए या फिर मेरा संशोधन कि—खण्ड 10 के दूसरे आदेश-मूलक टुकड़े में ''वही कर और चुंगी'' की जगह ''वही व्यवस्था'' ''कर और चुंगी'' रख दिये जायें। मैं कोई भी ऐसा संशोधन स्वीकार करने के लिए तैयार हूं जिससे मेरी यह बात स्पष्ट होती हो कि एक इकाई (प्रदेश) दूसरे प्रदेशों के माल पर वही शर्तें और नियम लगा सकता है जो अपने यहां तैयार हुए माल पर लगा सकता है। इसीलिए मैं यह संशोधन पेश करता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बम्बई : जनरल): मैं अपना संशोधन नहीं पेश करना चाहता।

***अध्यक्ष:** सो वास्तव में हमारे सामने दो संशोधन हैं—एक श्री मुंशी द्वारा प्रस्तावित, और दूसरा श्रीयुत सन्तानम् का।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** यह बात है जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता था और वह है रिपोर्ट का 5वां पैराग्राफ, जो मैं भूल गया था। इस (पैराग्राफ) में वह व्यवस्था है जो रियासतों की विभिन्न अवस्थाओं पर लागू होगी और जिसके लिए नियम बनाने की जरूरत है। हमने रिपोर्ट के 5वें पैरे में कहा है—

> ''इसलिए हम समझते हैं कि (Union) संघ के लिए यह समुचित होगा कि वह ऐसी रियासतों के साथ उनके वर्तमान अधिकारों को देखते हुए उन्हें विधान के अनुसार निश्चित अधिक-से-अधिक समय देने के विचार से ऐसा समझौता कर लें जिसके अनुसार भीतरी चुंगी हटा दी जा सके और संघ के अन्दर पूर्णत: स्वतंत्र व्यापार की स्थापना हो जाये।''

रहा श्री सन्तानम् का संशोधन सो मेरा ख्याल है कि श्री मुंशी के संशोधन से जिसे मैं स्वीकार करना चाहता हूं उसकी आवश्यकता भी पूरी हो जाती है, क्योंकि यह उसके विरुद्ध नहीं है। मैं नहीं समझता कि इस पर और बहस की जरूरत है।

इसलिए मैं संशोधित खंड (Clause) सभा के सामने स्वीकृति के लिए पेश करता हूं।

तीसरे आदेश में कुछ लिखावट-सम्बन्धी भूल रह गई है। ''एक इकाई द्वारा'' (by a Unit) शब्द इसमें अनावश्यक हैं। इस प्रकार खंड निम्नलिखित हो जायेगा—

> ''मगर शर्त यह है कि व्यवसाय या महसूल के किसी नियम से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेश पर तरजीह न दी जायेगी।''

***अध्यक्ष:** अब मैं उस खंड (Clause) पर मत लूंगा।

> ''यूनियन के कानून के आदेशों के विपरीत न जाते हुए नागरिकों को व्यक्तिगत रूप से एक प्रदेश से दूसरे में व्यापार, व्यवसाय और परस्पर सम्पर्क की स्वतंत्रता होगी।''

इस पर कोई संशोधन नहीं है।

खंड स्वीकार किया गया।

पहला नियम

> ''मगर शर्त यह है कि कोई प्रदेश, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता या जन-स्वास्थ्य के हित में या किसी गम्भीर स्थिति की हालत में कानून बनाकर समुचित पाबंदी लगा सकता है।''

[अध्यक्ष]

इसमें प्रस्तावित संशोधन है कि 'समुचित' शब्द हटा दिया जाये।

संशोधन स्वीकार किया गया।

दूसरा नियम

''मगर शर्त यह है कि इस धारा के किसी आदेश से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेशों से लाये हुए माल पर वही कर और टैक्स लगाने में कोई बाधा नहीं होगी जो उस प्रदेश में पैदा होने वाले माल पर लगते हों।''

इसमें दो संशोधन हैं—एक श्री सन्तानम् का और दूसरा श्री मुंशी का।

मैं श्री सन्तानम् का संशोधन पहले रखता हूं। इस संशोधन के बाद नियम इस प्रकार पढ़ा जायेगा—

''मगर शर्त यह है कि इस धारा के किसी आदेश से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेशों से लाये हुए माल पर वही कर, टैक्स और प्रतिबंध लगाने में कोई बाधा नहीं होगी जो उस प्रदेश में पैदा होने वाले माल पर लगते हों।''

पहले उन्होंने 'नियंत्रण' शब्द लिखा था, बाद में उसे बदलकर 'प्रतिबंध' कर दिया। उसका अन्तिम भाग इस प्रकार होगा—''वही कर, टैक्स और प्रतिबंध लगायें जो उस प्रदेश में पैदा होने वाले माल पर लगते हों।''

दूसरा संशोधन श्री मुंशी का है, जो इस प्रकार है—

''मगर शर्त यह है कि इस धारा के किसी आदेश से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेशों से लाये हुए माल पर, उसी प्रदेश के-से नियमों और वहीं की-सी दशाओं में, वही कर, टैक्स लगाने में कोई बाधा न होगी जो उस प्रदेश में पैदा होने वाले माल पर लगते हों।''

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): मैं इसमें 'इसी प्रकार के' (Similar) शब्द और जोड़ना चाहता हूं नहीं तो इसका कोई अर्थ नहीं होता।

***अध्यक्ष:** *(श्री अनन्तशयनम् आयंगर से)* मुझे आपका संशोधन नहीं मिला है।

श्री सन्तानम् का संशोधन स्वीकार नहीं हुआ।

श्री मुंशी का संशोधन स्वीकार हुआ।

***अध्यक्ष:** (तीसरा नियम) ''मगर शर्त यह है कि व्यवसाय या महसूल के किसी नियम से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेश पर तरजीह न दी जायेगी।''

यहां एक जबानी परिवर्तन सुझाया गया है। हमें कहा गया है कि ''एक प्रदेश द्वारा'' शब्द हटा दिया जाये, क्योंकि वह अनावश्यक है। नियम इस प्रकार पढ़ा जायेगा—

''मगर शर्त यह है कि व्यवसाय या महसूल के किसी नियम से किसी प्रदेश को दूसरे प्रदेश पर तरजीह न दी जायेगी।''

नियम संशोधन सहित सभा के सामने रखा गया।

नियम संशोधन सहित स्वीकार किया गया।

अब मैं संशोधन सहित सारा खण्ड रखूंगा। श्री राजगोपालाचार्य का कहना है कि पहला नियम अन्त में आना चाहिए और उसका सिलसिला बदल देना चाहिए।

***माननीय श्री सी. राजगोपालाचार्य** (मद्रास : जनरल): कारण यह है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य के हित के लिए जो प्रतिबन्ध रखे जायेंगे वह प्रान्त-प्रान्त में अलग-अलग होंगे। अगर हम दूसरे नियम में यह कहते हैं कि कोई भेदभावमूलक प्रतिबंध नहीं होगा तो इसका यह मतलब होगा कि जब यह छूत की बीमारी फैली हो तो आपको सभी प्रदेशों में वही प्रतिबन्ध डालना पड़ेगा जो एक पर लगाया जायेगा। इससे इस तरह बचा जा सकता है कि आप उसमें एक खास और अन्तिम नियम और जोड़ दें और उसे पहला रखें।

***अध्यक्ष:** मैं सारा खंड संशोधन-सहित नियमों के सिलसिले में अदल-बदल के साथ रखता हूं।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): इसमें 'और' (Further) शब्द जरूर जोड़ दिया जाना चाहिए जिससे ''और शर्त है कि'' पढ़ा जा सके।

***अध्यक्ष:** संशोधन इस प्रकार है—

> ''पहले नियम में, जो अब परिवर्तित क्रम से तीसरा बन गया है, 'और' (Further) शब्द जोड़ दिया जाना चाहिए।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***श्री के.एम. मुंशी:** यह तो एक प्रबन्ध की बात है। मैं इस पर विवाद नहीं करना चाहता। कानून (Act) का मसविदा बनाते समय वह यहां रख दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** खण्ड, संशोधन के साथ सभा के सम्मुख रखा जाता है।

खण्ड, संशोधन-सहित स्वीकार किया गया।

खण्ड 11—स्वतंत्रता के अधिकार

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल** (बम्बई : जनरल): यह खण्ड बेगार के सम्बन्ध में है और इस प्रकार है—

''11 (क) मनुष्यों का व्यापार,

(ख) जबर्दस्ती काम कराना जिसमें बेगार लेना भी शामिल है और इच्छा-विरुद्ध गुलामी, जिसमें विधिवत् दण्ड प्राप्त लोगों का सजा भोगना शामिल नहीं होगा,

इस विधान द्वारा निषिद्ध करार दिये जाते हैं और इस निषेधाज्ञा के विरुद्ध आचरण अपराध समझा जायेगा।''

[माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल]

इसके बाद इसकी व्याख्या है—

> मगर शर्त यह है कि इस वाक्य-खण्ड के किसी आदेश से सरकार को सार्वजनिक कामों के लिये अनिवार्य रूप से काम लेने में कोई बाधा न होगी लेकिन ऐसा करने में जाति, धर्म, वर्ण या वर्ग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरता जायेगा।

अब हमें इस आधार पर बहस करने का प्रयत्न करना चाहिए और उसे संक्षिप्त रूप में तैयार करके और अधिक बोधगम्य रूप में रख देना चाहिए, और इसको पृथक् खण्ड न रखकर एक ही खण्ड के अन्तर्गत करके—'मनुष्यों का व्यापार' के नाम से रख देना चाहिए।

***अध्यक्ष:** सुझाये गए संशोधन सदस्यों में बांटे नहीं गये हैं और उन्हें मालूम नहीं है कि उसमें क्या-क्या परिवर्तन करने की राय दी गई है। मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि पहले आप खण्ड (Clause) को पेश कीजिए—उसके बाद संशोधन पेश किये जा सकेंगे।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** तो मैं यह खण्ड उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्ष:** इस खण्ड पर कई संशोधनों की सूचनाएं मुझे प्राप्त हुई हैं। श्री मुंशी का संशोधन सदस्यों में बांटा नहीं गया है। यह मुझे अभी दो ही मिनट पहले मिला है। फिर भी हमें काम के साथ आगे बढ़ना है। मैं और संशोधन पहले लेता हूं।

***श्री एम.आर. मसानी** (बम्बई : जनरल): यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि जब तक श्री मुंशी का संशोधन न पेश हो तब तक और संशोधन पेश किये जायें या नहीं। मैं यह सुझाव पेश करता हूं कि सर्वसम्मत संशोधन पेश किया जाये।

***अध्यक्ष:** मुझे मालूम नहीं है कि सर्वसम्मत संशोधन कौन-सा है।

***श्री के.एम. मुंशी:** अध्यक्ष महोदय, मैं जो संशोधन पेश कर रहा हूं वह इस प्रकार है—

'कि खण्ड 11 की जगह यह रखा जाये:

''मनुष्य की बिक्री का धन्धा और बेगार तथा इसी तरह जबर्दस्ती काम लेने की प्रथा निषिद्ध करार दी जाती है और इस निषेधाज्ञा के विरुद्ध आचरण अपराध होगा।

उद्देश्य यह है कि एक ही वाक्य में दोनों विषय आ जायें। व्याख्या निकाल दी गई क्योंकि उसकी कोई जरूरत नहीं है। इसका ध्येय यही है कि अगर किसी भी तरह की बेगार ली जाती हो या जबर्दस्ती काम लिया जाता तो वह बन्द कर दिया जाये। मनुष्यों की ब्रिक्री सम्बन्धी कारबार पर निषेधाज्ञा लगा दी जायेगी। पर

अन्य प्रकार के श्रम जैसे शिक्षा-प्रसार या जन-सेवा के श्रम-कार्य को कानून बनाकर वैध करार दिया जायेगा।

***श्री पी.आर. ठाकुर** (बंगाल : जनरल): 'बेगार' शब्द इटैलिक (दूसरे अक्षरों) में देना चाहिए—

***अध्यक्ष:** खण्ड, यदि संशोधन स्वीकार किया गया तो इस प्रकार पढ़ा जायेगा—

''मनुष्य की बिक्री का धन्धा और 'बेगार' और इसी तरह जबर्दस्ती लिये जाने वाले कामों का निषेध होगा और इसके विरुद्ध कोई भी आचरण अपराध होगा।''

उपखण्ड (ख) की व्याख्या निकाल दी गई है, इसलिए यह संक्षिप्त और बोध-गम्य हो—

कई संशोधनों की सूचनाएं मुझे मिली हैं। मैं सदस्यों को एक-एक करके बुलाऊंगा जिससे वह अपने-अपने संशोधन पेश कर सकें।

***माननीय श्री जगजीवन राम** (बिहार : जनरल): इस संशोधन को देखते हुए मैं अपने संशोधन पर (पूरक सूची 2-संशोधन नं. 27) जोर नहीं देना चाहता।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): यदि सभा श्री मुंशी का संशोधन स्वीकार कर लेती है तो मुझे संशोधन पेश करने की जरूरत नहीं रहती जो अतिरिक्त सूची (Supplementary List) के 29वें नम्बर पर आता है। यदि वह स्वीकार नहीं हुआ, तो मैं अपना संशोधन बाद में पेश करने का अधिकार सुरक्षित रखूंगा।

***श्री एम.आर. मसानी:** अध्यक्ष महोदय, मैंने एक संशोधन (दूसरी अतिरिक्त सूची के 36वें नम्बर) पेश करने की सूचना दी थी जिससे सजग आपत्तिकर्त्ताओं, (Conscientious Objection) के अधिकारों की रक्षा हो सके क्योंकि यहां व्याख्या द्वारा राज्य को बहुत व्यापक अधिकार मिल गये हैं। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हो रही है कि वह व्याख्या हटा दी गई है, इसलिये मैं अपने संशोधन पर अब जोर नहीं डालना चाहता।

अध्यक्ष: अब प्रस्ताव और संशोधन पर बहस हो सकती है।

***डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बंगाल : जनरल): मैं जो बात रखना चाहता हूं वह यह है कि यद्यपि मैं उपखण्ड (क) और (छ) का फिर से लिखे जाने में कोई आपत्ति नहीं करता जिससे वह एक सुदृढ़ रूप में चल सके, फिर भी मुझे कुछ सन्देह है कि यह व्याख्या हटा देना अधिकांश एडवाइजरी कमेटी के सदस्यों की इस इच्छा के अनुकूल है कि राज्य को अनिवार्य सेवा कराने का अधिकार नहीं होना चाहिए। श्री मुन्शी की राय है कि अगर इस खण्ड को पुनर्निर्मित

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

रूप में रखा जाता है और यदि व्याख्या हटा दी जाती है तो भी राज्य को अनिवार्य सैनिक-सेवा लेने का अधिकार होगा मुझे प्रस्तावित परिवर्तन—व्याख्या हटाने—के परिणाम पर सोचने का काफी समय नहीं मिला है। पर मुझे भय है कि व्याख्या के निकाल देने और खण्ड को, जिस स्वरूप में वह है उसी स्वरूप में रखने से बिल्कुल उल्टे और गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। क्योंकि 'बेगार' भी कुछ ऐसी ही चीज है जो राज्य द्वारा लगाई जाती है। जहां तक मुझे मालूम है बम्बई में कतिपय सार्वजनिक कामों के लिए सरकार 'बेगार' मांगती है और अगर राज्य को बेगार लेने से रोक दिया जाता है तो सम्भवत: कोई भी व्यक्ति यह तर्क पेश कर सकता है अनिवार्य सैनिक सेवा भी बेगार है। इसलिये मुझे इस बात से पूर्ण सन्तोष नहीं है कि व्याख्या निकाल देना इस समय कोई अच्छी बात है। इस विषय में मैं कोई विशेष परामर्श नहीं दे सकता; पर मैं समझता हूं कि मैं सभा का ध्यान उस सन्देह की ओर खींचूं जो मैं व्याख्या निकाल देने पर अपने मन में कर रहा हूं। मेरा ख्याल है कि उसका गम्भीर परिणाम हो सकता है और सैनिक और सामाजिक कामों के लिए अनिवार्य सेवा लेने का जो राज्य को अधिकार है इससे उस पर इसका प्रभाव पड़ेगा। मेरी तो यह सलाह होगी कि हमें व्याख्या निकालनी नहीं चाहिए और इसे ज्यों-का-त्यों छोड़ देना चाहिए और इस पर तब विचार करना चाहिए जब प्रान्तीय और देशी राज्यों के विधान अपने-अपने रूप में पुन: बनाये जायें।

***श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन** (मद्रास : जनरल): श्रीयुत अध्यक्ष जी, मुझे खण्ड 11 का अनुमोदन करने में बड़ी प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि यह एक ऐसा खण्ड है जो ऐसे समाज पर, विशाल जन समूह पर, लागू होता है जो सदियों से अब तक मूक वेदना सहते आये हैं। महोदय, भारत के कुछ भागों में अब भी मनुष्य बेचने का रोजगार होता है और खण्ड का इस देश के उन गुलामों पर बड़ा असर पड़ेगा जो भारत की स्वतंत्रता के बाद अपनी आवाज उठा सकेंगे। इस खण्ड की बदौलत भारत के फासिस्ट सामाजिक ढांचे में आर्थिक क्रांति हो जायेगी। इस भूमि के गुलामों की सभी अभागे भाइयों का अक्षमताओं का मूल कारण है, इस उपेक्षित सम्प्रदाय के अभागे भाइयों की आर्थिक अवस्था। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस भूमि के कुछ अभागों को बिना कुछ पारिश्रमिक दैनिक गुजारे का भी साधन-प्राप्त किये काम करना पड़े और जो लोग खेतों में या अन्यत्र काम करते हैं उनको बिना एक पाई भी पाये घर को लौटना पड़े। उन्हें मजदूरी मांगने का भी अधिकार नहीं है, यद्यपि उन्हें दिन रात काम करना पड़ता है। अगर उन्हें काम करने को कहा जाये और वह काम पर न जायें तो उन्हें सजा दी जाती है। भारत के कुछ प्रान्तों में जैसे—संयुक्त प्रान्त में—अब भी यही बात देखी जाती है यद्यपि भारत के अन्य प्रान्तों में 'बेगार' की प्रथा नहीं है, पर इसी तरह की मिलती-जुलती बेगार और जबर्दस्तियां सारे देश में प्रचलित हैं। भारत का अधिकांश जन-समाज आर्थिक दृष्टि से और सब भांति शोषित हो रहा है। इस देश के सभी गुलाम उन सभी सुविधाओं

से वंचित हैं जिनसे जीवन सुखी होता है। प्रान्तों को स्वायत्त शासन मिलने के पहले ही यह रिवाज तोड़ दिया जाना चाहिए था। इस सम्बन्ध में यद्यपि कुछ प्रांतों में कुछ नियम-उपनियम बने हैं फिर भी यह जारी है और जो लोग इसके शिकार हो रहे हैं, वह अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए कोई आवाज नहीं उठा सकते। इसलिये यह खण्ड जब अस्तित्व में आयेगा—अमल में आयेगा—तो इससे बहुत से ऐसे लोगों को कष्ट से मुक्ति मिल जायेगी जो अभी आर्थिक शोषण के शिकार बने हुए हैं जब इस तरह के आर्थिक शोषण इस भूमि से उठ जाते हैं तो गुलाम भी ऊपर उठ जायेंगे और वह अपने अधिकार की मांग तथा प्रतिष्ठा और गौरव की रक्षा कर सकेंगे। उन्हें भी जीवन का आनन्द लेने का वैसा ही अधिकार मिलेगा जैसा ऊपर की श्रेणी और ऊंची जाति वालों को मिला हुआ है। मुझे इस खण्ड का समर्थन करते हुए बड़ी खुशी है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): मैं खण्ड 11 में श्री मुंशी द्वारा पेश किये संशोधन का समर्थन करने में बहुत खुश हूं। मैं खण्ड के नये मसविदे को स्वीकार करता हूं। महोदय, मैंने जबर्दस्ती काम कराने की समस्या का अध्ययन काफी सन् 1929 से ही किया है। सन् 1929 ई. में जब जेनेवा में (Forced Labour Convention) हुई थी, तो मैं उसमें सदस्य के रूप में सम्मिलित हुआ था। सन् 1930 में भारत ने (Forced Labour Convention) को स्वीकार किया था, पर देशी राज्यों ने—कुछ को छोड़—इसे स्वीकार नहीं किया। जिन देशी राज्यों के प्रतिनिधि यहाँ उपस्थित हैं उनमें अधिक में यह (बेगार) प्रथा अब नहीं है। महोदय, मेरे प्रान्त में छोटे-छोटे देशी राज्यों ने जबर्दस्ती काम लेने की प्रथा का लाभ उठाया है। उन्हें भारत-सरकार से सड़कें बनवाने के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त होती है जिसे वह अपने उपभोग में लाते हैं और बेगार द्वारा सड़कें बनवाते हैं तथा और मुल्की काम पूरा कराते हैं, इसलिए महोदय, मैं इसमें वह भय नहीं देखता जो मेरे दोस्त श्री अम्बेडकर को है। आकस्मिक राष्ट्रीय आवश्यकता के लिए सभी को अनिवार्य रूप में काम करना चाहिये फिर चाहे वह युद्ध हो, अकाल हो, अथवा बाढ़। पर मैं इसमें कोई ऐसी खामी नहीं रहने देना चाहता जिससे देशी राजे प्रजा से जबर्दस्ती काम ले सकें।

अध्यक्ष महोदय, एक बात से मुझे अभी सन्तोष नहीं हुआ है। मनुष्य बेचने के धन्धे में स्त्रियों को बेचने का पेशा सम्मिलित है या नहीं? हममें से कुछ ने इस विषय का अध्ययन दस वर्ष या इससे भी अधिक पहले से किया है। हर साल उड़ीसा और बंगाल से, जहां औरतें फालतू हैं हजारों स्त्रियां उड़ाई जाती हैं और वे भारत के दूसरे प्रान्तों को पहुंचा दी जाती हैं। यह काम बहुत से गुप्त दलालों और बदमाशों की टोलियां करती हैं जो ऐसी औरतों को बाहरी प्रान्तों में पहुंचाती हैं। ऐसी औरतें पीछे गृहस्थिन बनती हैं या शर्म की जिन्दगी बसर करती हैं, यह मैं नहीं जानता। हम यह तो जरूर जानते हैं कि ऐसी स्त्रियां पंजाब या

[श्री बी. दास]

पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को पहुंचाई जाती हैं जहां स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कम है। श्रीमान्, बंगाल के भीषण दुर्भिक्ष के दिनों में हमें इसका दु:खद अनुभव हुआ था जब लाखों औरतों को उड़ाया गया था। यह स्त्रियां अन्य प्रान्तों में पहुंचाई गईं या विशाल ब्रिटिश सेना में पहुंचाई गईं जो उन दिनों भारत के पूर्वी भाग में थीं, यह समस्या तो समाज का काम करने वाले ही सुलझा सकते हैं। इस खण्ड में ''स्त्रियों को बेचने का पेशा'' शब्द भी खास तौर पर रख दिया जाता तो मैं बहुत प्रसन्न होता।

हममें से जो भारत के पूर्वी भाग के हैं उन्हें भय है कि बुनियादी अधिकारों में इस नियम के होते हुए भी बेपरवाह रुपये कमाने वाले इस पेशे को चलाते रहेंगे। इसलिए मैं सरदार पटेल से आश्वासन चाहता हूं कि क्या उनके ध्यान में ऐसी कोई व्यवस्था है जिसके द्वारा स्त्रियों के बेचने का पेशा हमेशा के लिये बन्द हो जाये।

महोदय, मैं देशी राज्यों के प्रतिनिधियों से भी आश्वासन चाहता हूं कि वे पिछड़े हुए राज्यों के अपने साथियों को समझा-बुझा कर बेगार या जबर्दस्ती काम लेने की प्रथा उठवा दें, जो इन दिनों बहुत-सी छोटी रियासतों में लाभ का एक साधन बन गई है।

***डॉ. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): क्या मैं उन कठिनाइयों का जिक्र कर सकता हूं जो खण्ड में सुझाये हुए काट-छांट करने से पैदा होंगी? पहली बात तो यह है कि कोई भी इसमें सन्देह नहीं करता कि बेगार-प्रथा जरूर दूर हो जाये। पर मूल खण्ड में कई शर्त-मूलक व्याख्याएं हैं, जिन्हें निकाल दिया गया है। उदाहरणार्थ, कहा गया है कि—''अनिच्छापूर्ण गुलामी, सिवा इसके कि जो किसी जुर्म के कारण भोगनी पड़ रही हो और जिसके लिए बाकायदा कानूनी सजा मिल चुकी हो।'' यह बात सब अच्छी तरह जानते हैं कि बच्चों के सुधार के लिए बनी हुई जेलों में जहां पढ़ाई भी होती है और नवयुवकों के बोर्सटल-इन्स्टीट्यूटों जो जेल के परिष्कृत रूप हैं, वहां भी—जहां सरकार इन अपेक्षाकृत सुधरे और आदर्श जेलों में भी जेलों के नियमानुसार सरकार की अभिभावुकता में अर्द्ध-बन्दियों से भी उनके दण्डकाल में जेल-नियम के अनुसार मेहनत ली जाती है और यह वैध एवं उचित समझा जाता है। अगर हम खण्ड को इस रूप में रखते हैं कि बेगार या जबर्दस्ती काम लेना निषिद्ध करार दिया जायेगा और इसके विरुद्ध आचरण करने वाले को अपराधी या मुजरिम समझा जायेगा, तो बड़ी कठिनाइयां उपस्थित होंगी। मैं अपने दोस्त डॉ. अम्बेडकर की इस बात से सहमत हूं कि इन कठिनाइयों से बचने का उपाय है व्याख्या का कायम रखना, क्योंकि ''सार्वजनिक हित के लिए'' इसमें इस तरह के सभी मामले आ जायेंगे—क्योंकि जेल या कैदखानों में या अर्द्धसरकारी संस्थाओं में लोग राज्य की संरक्षकता में होते हैं। और वहां (जेलों आदि में) उनसे वहां के रहने वालों या सरकार की भलाई के लिए जबर्दस्ती काम लेना अवैध या गैरकानूनी भी नहीं है। यदि अब भी कोई सन्देह हो तो

हम ''उन अवस्थाओं में जब वे सरकारी गुलामी में हो'' या इसी तरह की और व्याख्या जोड़ दें। पर संशोधन जिस प्रकार रखा गया है—''अर्थात्, मनुष्य बेचने का पेशा और किसी तरह की बेगार—जबर्दस्ती काम लेना इस आज्ञा द्वारा निषिद्ध करार दी जाती है''.....।

***श्री के.एम. मुंशी:** साथ ही और भी ऐसे ही शब्द हैं—''इसी प्रकार भी तरीके'' (Similar other forms)।

***श्री पी.के. सेन:** 'Similar' शब्द अस्पष्ट है। मैं सचमुच यह समझ नहीं पा रहा हूं कि व्याख्या कायम रखने में क्या कठिनाई या आपत्ति है। व्याख्या बिल्कुल सीधी, स्पष्ट और अहानिप्रद है और यह केवल इतना ही कहती है कि अमुक सार्वजनिक कार्य के लिए जैसा कि सभी सभ्य देशों में प्रचलित है—नागरिकों से अनिवार्य सेवा ली जा सकती है—इसमें उनका भी हित है और राष्ट्र का भी। इसलिये मेरा निवेदन है कि व्याख्या या तो उसके वास्तविक रूप में या आवश्यक परिवर्तन के साथ स्वीकार की जाये नहीं तो सभी तरह की उलझनें पैदा हो सकती हैं।

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस प्रश्न पर कि व्याख्या करना जरूरी है या नहीं, मेरा विचार बिल्कुल स्पष्ट है। जहां तक पहले उपखण्ड का सवाल है, इसमें अनिवार्य सैनिक-भर्ती में अड़चन नहीं पड़ेगी। कमेटी (समिति) में श्री मसानी ने एक विशेष खण्ड इस आशय का जोड़ा था कि अनिवार्य सैनिक भर्ती नहीं होगी; पर वह निकाल दिया गया था। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में गुलामी तथा गुलामी-विरोधी कानूनों की मौजूदगी में भी वहां के प्रधान न्यायालय ने यह फैसला दिया है कि अनिवार्य सैनिक-भर्ती जारी करने में यह कानून कोई बाधा नहीं पहुंचाते। वहां के प्रधान न्यायाधीश ने अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी लेखकों का हवाला देते हुए बतलाया है कि राष्ट्र का अस्तित्व ही सैनिक-शक्ति पर निर्भर है और दासता या दासता-विरोधी या सेवा सम्बन्धी विधान का यह मतलब नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को अनिवार्य सैनिक-भर्ती करने से रोका जा सकता है। इसलिए बेगार या जबर्दस्ती काम लेने के इस प्रकार के अन्य रूपों की व्याख्या अनिवार्य सैनिक भर्ती को सम्भवत: उससे अलग नहीं कर सकती। यह मेरा विचार है और मैं नहीं समझता कि भावी कानून बनाने वाले इस प्रकार के खण्ड के कारण अनिवार्य सैनिक भर्ती का कानून बनाने से रोके जा सकते हैं। खण्ड में जो 'इसी प्रकार के' (Similar) शब्द आया है उससे यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि इससे अनिवार्य सैनिक भर्ती के कानून को दृष्टि में रखा गया है। इसलिए इन परिस्थितियों में भी कोई डर की बात नहीं है। पर इसका यह मतलब नहीं है कि मैं व्याख्या को कायम रखने का विरोधी हूं। कल कमेटी में बतलाया गया था कि व्याख्या कायम रखने पर गांवों और उनकी संस्थाओं में काम करते समय बड़ी कठिनाइयां आ सकती हैं,

[दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

और उनके निकाल देने में कोई हर्ज भी नहीं है, इसीलिए कल कमेटी की बहस में इसे निकाल दिया गया था। मैं नहीं समझता कि वर्तमान बेगार-विधान के कारण संघ-सरकार अनिवार्य सैनिक-भर्ती के अधिकार को नाजायज करार दिये जाने का कोई खतरा है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** कमेटी की बैठक में मेरी भी वही राय थी जो सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर की थी। मैंने वर्तमान खण्ड बदलने की बात स्वीकार की थी; पर पुन: विचार करने पर मैं समझता हूं कि मूल खण्ड कायम रखा जा सकता है। मैं इसका कारण अभी बताता हूं जो इस प्रकार है। खण्ड में दो बातों का जिक्र है—एक तो मनुष्य को बेचने के पेशे का, और दूसरा बेगार रोकने का। दण्ड-विधान में इन दोनों को पहले ही से व्यवस्था प्राप्त है। भारतीय दण्ड विधान की 370वीं धारा मनुष्य की बिक्री का निषेध करती है और 374वीं धारा किसी भी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती काम लेने को जुर्म करार देती है। पर उस जगह इसे ''गैर-कानूनी'' कहा गया है। ''गैर-कानूनी'' का मतलब यह है कि कोई भी व्यवस्थापक-सभा यह कानून पास कर सकती है कि खास उद्देश्यों के लिए परिश्रम जबर्दस्ती भी कराया जा सकता है, जैसे कोई शख्स जुर्म में सजा पाने पर सपरिश्रम कारावास दण्ड भोगने की स्थिति में करता है, अथवा बाढ़ आ जाने पर गांव वालों के हित के लिए उनको तालाबों तथा बांधों आदि की मरम्मत के लिए जबर्दस्ती काम पर लगाया जा सकता है। इसके अनुसार सैनिक-भर्ती भी अनिवार्य की जा सकती है। अब यह दो कानून, जो सामान्य विधान में पहले ही से भारतीय दण्ड विधान की 370 और 374वीं धाराओं के रूप में मौजूद हैं, और उन्हें अब ऊंचा उठा कर बुनियादी अधिकारों का रूप दिया जा रहा है तो हमें जरा सावधानी से काम लेना चाहिए। जब हम इसे बुनियादी अधिकारों का दर्जा दे रहे हैं, तो जब तक हम अन्य व्याख्याएं इसमें न जोड़ें और राज्य को इन दो बुनियादी अधिकारों को अपवाद-स्वरूप देने को न कहें तो इससे ऐसा प्रतीत हो सकता है—और अदालतें भी ऐसा अर्थ लगा सकती हैं कि साधारण कानूनों में से उन्हें निकालकर स्थायी विधान में बुनियादी अधिकार के रूप में रख देना राज्य को अधिकार से वंचित करना है—और इससे राज्य आकस्मिक आवश्यकताओं के समय भी—बेगार आदि के बारे में कानून बनाने का अधिकार खो देता है। यदि इस संशोधन को उपस्थित करने वाले श्री मुंशी के मस्तिष्क में यह बात हो कि आवश्यकता पड़ने पर राज्य को अनिवार्य सैनिक-भर्ती से वंचित नहीं करना है, तो इसको यहीं समाप्त कर देना चाहिए। मैं व्याख्या कायम रखने या मूल प्रस्ताव को ज्यों-का-त्यों रहने देने में कोई आपत्ति नहीं देखता। संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है। हमें अपने विचारों को स्पष्ट कर लेना चाहिए। अन्यथा इसका यह अर्थ होगा कि हमने अनिवार्य सैनिक-भर्ती प्रांतीय व्यवस्थापक-सभाओं में तत्सम्बन्धी विधान-निर्माण या किसी खास प्रदेश द्वारा लोगों से जबर्दस्ती काम

कराने की बात पर विचार नहीं किया और उसके बारे में राज्य के अधिकार को सदा के लिए भंग कर दिया है। डॉ. अम्बेडकर के तर्क जोरदार हैं और मैं इस संशोधन के पक्ष में नहीं हूं। मूल खण्ड ज्यों-का-त्यों रहने दिया जा सकता है। हमें यह बात अपने मन में स्पष्ट रूप में बिठा लेनी चाहिए कि हमें अनिवार्य सैनिक-भर्ती की अभी इसी दम आवश्यकता है या नहीं। इसका निर्णय न्यायाधीशों के लिए न छोड़िए। पर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर न कहा है कि अमेरिकन न्यायालय ने इसका किस रूप में अर्थ लगाया है। अमेरिका में वह कानून बहुत पहले बना था, इसलिये समय-समय पर उसका अभिप्राय वर्द्धित करने के लिए व्याख्या करना जरूरी हो जाता है। हम जानते हैं कि केवल बारह सूचिका स्तम्भों का भाष्य बढ़ाते-बढ़ाते 150 जिल्दों 'जस्टीनियन कोड' बन गया। लोग तो समय-समय पर कानून में हेर-फेर करते रहने के पक्ष में नहीं हैं, पर कानून के पंडितों ने बहुत-सी चीजों को व्याख्या के रूप में गढ़ लिया और उससे नये कानून का विकास करते आये हैं। अब जब हम विधान-ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहे हैं तो हम भावी व्याख्या न्यायाधीशों के निर्णय पर क्यों छोड़े? मैं संशोधन का विरोध करता हूं और मूल खण्ड (clause) को ज्यों-का-त्यों रखने के पक्ष में हूं।

***डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मैं एक सुझाव पेश कर सकता हूं, हमने सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के तर्क सुन लिये हैं जिन्होंने कहा है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रधान न्यायालय ने जो फैसला दिया था उसके अनुसार उनकी राय में व्याख्या न होने की अवस्था में भी, राष्ट्र को अनिवार्य सैनिक-भर्ती करने की स्वीकृति प्राप्त है। सौभाग्यवश मुझे भी वही प्रसंग पढ़ने का अवसर मिला जो मुझे निश्चय है, सर अल्लादी के मतिष्क में है। मैं समझता हूं कि अगर वे प्रधान न्यायालय के निर्णय में दिये गये युक्ति और तर्क को पूर्णत: देख लेंगे तो वे मुझसे सहमत होंगे कि प्रधान न्यायालय के निर्णय का खास बिन्दु यह था। वह इस अनुमान (Hypothesis) पर आगे बढ़ती है कि राजनीतिक संगठन में स्वतंत्र नागरिक का कर्त्तव्य सरकार को सहयोग देना होता है इसलिए अनिवार्य सैनिक-भर्ती का कानून नागरिकों से यह कहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहता कि वह राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करें। मेरा निवेदन है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय—राष्ट्र के लिए अनिवार्य सैनिक सेवा—की ऐसी बुनियाद बहुत ही संदिग्ध है।

मेरा कहना है कि हमें इस विषय में उस युक्ति और तर्क पर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए जो भारत के प्रधान न्यायालय ग्रहण कर सकता है या नहीं। इसलिए मेरी यह राय है कि जिस प्रकार नागरिकता-सम्बन्धी अन्य खण्ड के लिए आपने एक छोटी-सी कमेटी नियुक्त कर दी है कि वह उस विषय पर वाद-विवाद की स्थिति का अनुसन्धान करें, उसी तरह इस विषय के लिए भी एक कमेटी नियुक्त कर दें। व्याख्या रखी जानी चाहिए या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करने

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

के लिए एक छोटी-सी कमेटी बना दी जाये जो इस सभा को रिपोर्ट दे। तब इस सभा के लिए इस मामले में फैसला करना आसान हो जायेगा।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि अगर डॉ. अम्बेडकर का सुझाया मार्ग स्वीकार्य है तो इस विषय पर आगे बहस चलाने की जरूरत नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): अनिवार्य सैनिक-सेवा के सवाल पर बहस हो सकती है।

***अध्यक्ष:** हम यहां यह निश्चय नहीं करने जा रहे हैं कि हमें अनिवार्य सैनिक-भर्ती करनी है या नहीं। प्रश्न यह है कि क्या बुनियादी अधिकार के अन्तर्गत अनिवार्य सैनिक-भर्ती निषिद्ध है? मैं इसे ठीक समझता हूं कि यह मामला उसी कमेटी के सुपुर्द कर दिया जाये जिसे और खण्ड सौंपे गये हैं।

***एक माननीय सदस्य:** सारा खण्ड 11?

***अध्यक्ष:** हां पूरा खण्ड 11।

(खंड सौंपा गया।)

खण्ड 12—स्वतंत्रता के अधिकार

***अध्यक्ष:** खण्ड 12।†

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** मैं खंड 12 पेश करता हूं। खंड 12 में कहा गया है:

> ''चौदह वर्ष की कम अवस्था का कोई बच्चा किसी कारखाने, खान या अन्य किसी खतरनाक काम में नहीं लगाया जायेगा।''

ऐसा विचार किया जाता है कि इसकी व्याख्या निकाल दी जाये। विचार है; परन्तु मैं खण्ड को ज्यों-का-त्यों पेश करता हूं—व्याख्या निकालने के लिए अलग संशोधन पेश किया जा सकता है।

***श्री के.एम. मुंशी:** मेरा प्रस्ताव है कि व्याख्या निकाल दी जाये जो इस प्रकार है:

> ''इसमें शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रम की वह क्रियाशीलताएं शामिल न होंगी जिनके द्वारा अनिवार्य श्रम करना पड़ता है।''

---

† ''चौदह वर्ष से कम उम्र का कोई बच्चा किसी कारखाने, खान या अन्य किसी खतरनाक काम में न लगाया जायेगा।''

व्याख्या—इस नियम में किसी आदेश से शिक्षा सम्बन्धी प्रोग्राम या कार्रवाई पर, जिसमें अनिवार्य श्रम आवश्यक है, कोई बाधा न आयेगी।

इसका सम्बन्ध इस खंड से बिल्कुल नहीं है इसलिए मेरा निवेदन है कि यह निकाल दिया जाये।

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 37—श्रीयुत कामत।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): मुझे बतलाया गया है कि यह खंड 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए है, इसलिए गर्भिणी स्त्रियों और बुड्ढ़ों का यहां सवाल नहीं उठता। मैं अपना संशोधन उपस्थित करने का अधिकार बाद के लिए सुरक्षित रखूंगा। इस समय मैं संशोधन न पेश करूंगा।

***श्री आर.के. सिधवाः** रहा संशोधन नं. 43, यह सभी नये खंड हैं और जैसा कि कल इस सभा द्वारा निश्चय किया गया है, मैं उन्हें इन खंडों के बाद में लूंगा।

***अध्यक्षः** संशोधन यह है। मैं श्री के.एम. मुंशी की व्याख्या निकाल देने का संशोधन सभा के सामने रखूंगा।

संशोधन स्वीकार किया गया।

खंड 12 संशोधन के साथ स्वीकार किया गया।

खण्ड 13—धर्म-सम्बन्धी अधिकार

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** मैं खण्ड 13 स्वीकार किये जाने का प्रस्ताव करता हूं जो इस प्रकार है:

सार्वजनिक शान्ति, सदाचार या जन-स्वास्थ्य और इस भाग के दूसरे आदेशों के विपरीत न जाते हुए सभी लोगों को अन्त:करण की स्वतंत्रता होगी और किसी धर्म का अनुयायी होने, उसका आचरण करने और उसको फैलाने का समान रूप से अधिकार होगा।

व्याख्या 1.—कृपाण धारण करना या उसे इधर-उधर ले जाना, सिख धर्म के आचरण के अन्तर्गत समझा जायेगा।

व्याख्या 2.—उपरोक्त अधिकारों में से कोई ऐसे आर्थिक, माली, राजनैतिक या दूसरे सांसारिक कार्य सम्मिलित नहीं हैं, जिनका सम्बन्ध धार्मिक आचरण से हो।

व्याख्या 3.—इस वाक्य खण्ड में जिस धार्मिक आचरण की स्वतंत्रता दी गई है, उससे राज्य को सामाजिक हित और सुधार के लिए संस्थाओं को कोई कानून बनाने में कोई बाधा नहीं होगी।

मैं देखता हूं कि इस आदेश-पत्र में अनेक संशोधन हैं। जब वे पेश किये जायेंगे तो मैं उन पर बोलूंगा और अगर कोई स्वीकार करने योग्य है तो उसे स्वीकार भी करूंगा।

***श्री के.एम. मुंशीः** महोदय, मैं इस आशय का संशोधन पेश करता हूं कि अन्तिम व्याख्या के बाद नीचे लिखे शब्द जोड़ दिये जायें—

[श्री के.एम. मुंशी]

''और हिन्दुओं की ऐसी धार्मिक संस्थाओं को, जो सार्वजनिक हों हिन्दुओं के किसी वर्ण या सम्प्रदाय के लोगों के वास्ते खोल देने के लिए''

ऊपर की व्याख्या का मजमून लिखे जाने के बाद यह सोचा गया कि जिस धार्मिक क्रिया का जिक्र किया गया है, वह इस प्रकार की नहीं होनी चाहिए जिससे व्यवस्थापक सभा को सामाजिक प्रश्नों को लेकर कानून बनाने में बाधा का सामना करना पड़े। मन्दिरों को सभी श्रेणी के हिन्दुओं के लिए खोलने के बारे में जो प्रश्न उठता है कि क्या यह धार्मिक क्रिया मानी जा सकता है। खण्ड का निर्माण इस प्रकार का न हो, इसलिये यह निश्चय किया गया कि हिन्दुओं की धार्मिक संस्था खोलने की बात इस ढंग से अमल में नहीं लाई जायेगी, जिससे हिन्दुओं की धार्मिक क्रिया में बाधा पड़े।

***अध्यक्षः** अब मैं उन सदस्यों से, जिन्होंने इस खण्ड में संशोधन उपस्थित करने की सूचना दी है, कहूंगा कि वह उन्हें पेश करें।

(कुछ देर बाद)

चूंकि मैं देखता हूं कि इस खण्ड पर कोई संशोधन पेश नहीं किया गया है, इसलिए मैं इस पर सभा का मत लेना चाहता हूं।

***श्री एच.जे. खाण्डेकर** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): यदि यह खण्ड स्वीकार किया जाता है तो 'सार्वजनिक पूजा-स्थान' शब्द की परिभाषा करनी पड़ेगी। जब तक यह नहीं हो जाता, तब तक लोगों के लिए यह जानना मुश्किल हो जायेगा कि सार्वजनिक पूजा का स्थान कौन-सा है। जहां सभी श्रेणी के लोगों को प्रवेश करने दिया जाता है, वहां भी दलित श्रेणी के लोग अन्दर नहीं जाने दिये जाते। जहां यह लिखित आदेश मौजूद है कि अमुक स्थान हरिजनों की पूजा के लिये खुला है, वहां भी पुजारी बाधा डालते हैं और कहते है। कि यह मन्दिर निजी है, इसलिये दलितों के लिए खुला नहीं है। इसलिए महोदय, यदि ''सार्वजनिक पूजा के स्थान'' की परिभाषा कर दी जाये तो कोई कठिनाई नहीं होगी। इसलिए मैं राय देता हूं कि ''सार्वजनिक पूजा के स्थान'' की परिभाषा होनी चाहिए।

***अध्यक्षः** क्या मैं जान सकता हूं कि किस खण्ड में यह शब्द आये हैं?

***श्री एच.जे. खाण्डेकरः** व्याख्या 3 में।

***अध्यक्षः** मैं तो वहां यह शब्द नहीं पाता, वहां तो सार्वजनिक पूजा के स्थान का जिक्र भी नहीं है।

***श्री एच.जे. खाण्डेकरः** ''सार्वजनिक किस्म की धार्मिक संस्थाएं'' इसकी मैं व्याख्या चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री खाण्डेकर सार्वजनिक ढंग की 'धार्मिक संस्था' की व्याख्या जानना चाहते हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाये कि जिन धार्मिक संस्थाओं का हवाला दिया गया है, वह हैं क्या?

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** महाशय, खण्ड इस प्रकार पढ़ा जाता है—''.....इस परिच्छेद के अन्य नियम'' की जगह—''.....इस भाग के अन्य नियम'' होना चाहिए।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** ''परिच्छेद'' की जगह ''भाग'' शब्द रख दिया गया है।

मैं श्री मुंशी का संशोधन स्वीकार करता हूं और मैं सभा को यह विवादग्रस्त विषय पास करने की स्वीकृति देने के लिए बधाई देता हूं, जिस पर कमेटी के कई दिन लगे हैं और जो कई कमेटियों से गुजर चुका है। मतभेद हो सकता है; पर कुल मिलाकर हमने सभा के सभी भागों को सन्तुष्ट करने को कोशिश की है। मेरा प्रस्ताव है कि यह खण्ड संशोधन सहित पास किया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं पहले व्याख्या नं. 3 के संशोधन पर मत लेता हूं, जो इस प्रकार है:

''यह कि 'और सार्वजनिक ढंग की धार्मिक संस्थाएं सभी श्रेणी या वर्ग के हिन्दुओं के लिए खोल दी जायें' शब्द व्याख्या 3 के बाद जोड़ दिये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** मैं अब इस खण्ड को संशोधन सहित सभा के सामने रखता हूं।

खण्ड संशोधन सहित स्वीकार किया गया।

अब हम खण्ड 14 लेते हैं।

खण्ड 14—धार्मिक अधिकार

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** अब मैं खण्ड 14 पेश करता हूं।

''हर धार्मिक सम्प्रदाय को अपने धार्मिक मामलों का प्रबन्ध स्वयं करने और साधारण कानून के आधीन सम्पत्ति को रखने, उसे प्राप्त करने और उसका प्रबंध करने तथा धार्मिक और खैराती कामों के लिए संस्थाओं को स्थापित करने या उनकी रक्षा करने का अधिकार होगा।''

इसमें श्री मुंशी एक छोटा-सा संशोधन पेश करेंगे। मैं यह खंड सभा की स्वीकृति के लिए पेश करता हूं।

***श्री के.एम. मुंशी:** मुझे यह संशोधन पेश करना है कि खण्ड 14 में सम्प्रदाय शब्द के बाद 'या उसका कोई भाग, जोड़ दिया जाये। ऐसा समझा गया है कि

[श्री के.एम. मुंशी]

केवल 'धार्मिक सम्प्रदाय' शब्द का प्रयोग किसी सम्प्रदाय के एक वर्ग को रक्षा से वंचित रख सकता है।

***श्री के. सन्तानम्:** 'साधारण कानून' का क्या अर्थ है?

***श्री के.एम. मुंशी:** विशेष कानून के अतिरिक्त देश का साधारण कानून भी है। जब 'कानून' शब्द का व्यवहार किया जाता है तो उसका अर्थ या तो प्रदेश (Unit) का कानून होता है या संघ (Union) का, जिसके भी अधिकार के अनुसार व्यवस्था की जा रही हो। अगर संघ सम्बन्धी विषय पर कानून है तो वह संघ का कानून होगा और अगर प्रदेश (Unit) सम्बन्धी विषय पर कानून है तो वह प्रदेश (Unit) का कानून होगा।

***अध्यक्ष:** 'साधारण कानून' का क्या यहां कोई विशेष महत्त्व है? कानून तो कानून ही है।

***श्री के.एम. मुंशी:** अभिप्राय यह था कि कोई भी विशिष्ट कानून इससे अलग नहीं रखा जायेगा। कुछ खास नियम विशेष प्रकार के लोगों के लिए ही बनते हैं। यदि सभा की इच्छा है कि केवल 'कानून' शब्द होना चाहिए तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***कुछ माननीय सदस्य:** ''कानून के आधीन''।

***अध्यक्ष:** श्री सन्तानम्, आपका संशोधन पेश होना है। संशोधन नं. 63।

***श्री के. सन्तानम्:** नहीं महोदय, मैं उसे नहीं पेश कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** श्री राजगोपालाचार्य, आपका एक संशोधन है।

***माननीय श्री राजगोपालाचार्य:** नहीं महोदय, मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** तो अब खण्ड और संशोधन पर बहस हो सकती है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं 'साधारण' शब्द निकाले जाने का विरोध करता हूं जो खास और स्थानीय कानूनों से भिन्न है जिन्हें भारतीय दण्ड-विधान में ब्रिटिश भारत की विशिष्ट प्रजा या खास भाग के लिए ही लागू है। किसी भी विशेष कानून द्वारा किसी भी धार्मिक संस्था के सम्पत्ति रखने के अधिकार पर प्रतिबन्ध नहीं लगना चाहिए। साधारण खण्ड एक्ट (General Clauses Act) में भी स्थानीय और विशेष कानूनों के बारे में यही परिभाषा मिलेगी। इसीलिए मैं 'साधारण' शब्द को रखना चाहता हूं। मैं समझता हूं कि खण्ड के निर्माताओं ने इन शब्दों को शामिल करके ठीक ही किया था।

***दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** साधारण खण्ड एक्ट और भारतीय दण्ड-विधान हमारे विधान की व्याख्या पर लागू नहीं होंगे। जब हमारा विधान अन्त में बने तो उसमें हमें व्याख्या-खण्ड रखना ही होगा।

***श्री एच.वी. कामत:** सर अल्लादी ने जो कुछ कहा है उसका एक शब्द भी मैं नहीं सुन सका।

***अध्यक्ष:** सर अल्लादी का विचार था कि साधारण खण्ड एक्ट (General Clauses Act) और दण्ड-विधान हमारे विधान पर लागू नहीं होंगे, इसलिये उनको कोई महत्त्व नहीं देना चाहिए।

श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त (बंगाल : जनरल): यदि 'वर्तमान हिन्दुस्तानी कानून' शब्द वहां रहे तो साधारण खण्ड एक्ट लागू होगा।

***अध्यक्ष:** आप सर अल्लादी से मतभेद रखने को स्वतंत्र हैं।

श्री सी. राजगोपालाचार्य: शब्दों की व्याख्या किस तरह की जाये, इसके अतिरिक्त यह बहुत आवश्यक है कि हम धार्मिक संस्थाओं (Religious Denomination) को जो विशेष अधिकार दे रहे हैं वह उन सभी कानूनों की शर्त पर होना चाहिए जो काम में लाये जायेंगे और इसलिए केवल 'कानून' शब्द रहना चाहिए—उनका कोई खास अंश नहीं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** हम यह सब कानून की पुस्तक में रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस विशिष्ट आपत्ति का यही अर्थ है।

***अध्यक्ष:** वास्तव में, इस पर काफी बहस हो चुकी है—और अगर कुछ और बाकी है तो फिर मसविदा बनाने वाली कमेटी उसे इसमें जोड़ देगी।

> अब मैं विभिन्न संशोधनों को रखूंगा। पहला संशोधन तो यह होगा कि ''या उसका कोई भाग'' शब्द ''संस्था'' और ''करेगी'' के बीच में रख दिया जाये। इस तरह वह खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा—''प्रत्येक धार्मिक संस्था या उसके किसी भाग को अपने मामलों की व्यवस्था करने का अधिकार होगा''.....आदि।

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** दूसरा संशोधन यह है कि 'साधारण' शब्द हटा दिया जाये।

संशोधन स्वीकार हुआ।

***अध्यक्ष:** संशोधन के बाद खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> ''हर एक धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी वर्ग को अपने धार्मिक मामलों का प्रबंध स्वयं करने और कानून के आधीन सम्पत्ति रखने, उसे प्राप्त करने

[अध्यक्ष]

और उसका प्रबंध करने तथा धार्मिक या खैराती कामों के लिए संस्थाओं को स्थापित करने व उनकी रक्षा करने का अधिकार होगा।''

मैं संशोधित खण्ड सभा के सामने रखता हूं।

मय संशोधन खण्ड 14 स्वीकृत हुआ।

खण्ड 15—धर्म-सम्बन्धी अधिकार

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** पहले मैं—खण्ड 15

''किसी भी व्यक्ति को ऐसे टैक्स देने के लिए मजबूर नहीं किया जायेगा जिसकी आय स्पष्ट रूप से किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय के हित-साधन या उसकी रक्षा के लिए लगाई जाती हो।''

मैं नहीं समझता कि इस खण्ड में कोई भी संशोधन है और मैं इसे स्वीकार किये जाने के लिए सभा के सम्मुख रखता हूं।

***अध्यक्ष:** चूंकि इस खण्ड में कोई संशोधन नहीं है, इसलिए मैं इसे सभा के सामने मत लेने के लिए रखता हूं।

खंड 15 स्वीकार किया गया।

खण्ड 16—धर्म-सम्बन्धी अधिकार

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** खण्ड 16। यह खण्ड एडवाइजरी कमेटी (परामर्श-समिति) में पास हुआ था, पर मैं समझता हूं कि इसे फिर एडवाइजरी कमेटी को वापस भेज देना चाहिए, क्योंकि इसमें कुछ कठिनाइयां हैं और ऐसा सुझाव पेश किया गया है कि इसे एडवाइजरी कमेटी के पास वापस भेज दिया जाये। सभा इस बात से सहमत है कि यह खंड एडवाइजरी कमेटी के पास वापस भेज दिया जाये।

***अध्यक्ष:** तो आप इस बाकायदा पेश कीजिये।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** मैं बाकायदा पेश करता हूं—

''किसी व्यक्ति को, जो ऐसे स्कूल में पढ़ता हो जो सार्वजनिक धन से चलाया जाता हो या सहायता पाता हो, उस स्कूल में दी जाने वाली धार्मिक-शिक्षा में या स्कूल में या उससे सम्बन्धित किसी स्थान में होने वाली धार्मिक पूजा, में भाग लेने के लिए मजबूर किया जायेगा।''

***अध्यक्ष:** सभा के मत से यह खण्ड एडवाइजरी कमेटी के पास वापस भेजा जाता है।

खण्ड 17—धर्म-संबंधी अधिकार

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** ''बलपूर्वक या अनुचित प्रभाव से जो धर्म-परिवर्तन होगा उसे कानून नहीं स्वीकार करेगा।''

***श्री के.एम. मुंशी:** महाशय, मैं इसमें नीचे लिखा संशोधन पेश करना चाहता हूं—

> ''यह कि खण्ड 17 के बदले यह खण्ड रख दिया जाये—किसी भी व्यक्ति को धोखे या दबाव से या अनुचित प्रभाव डालकर, अथवा 18 वर्ष से कम अवस्था के नाबालिग को, एक धर्म से दूसरे धर्म में प्रविष्ट करने पर यह धर्म-परिवर्तन कानून से जायज नहीं माना जायेगा''।

मूल खण्ड से इसमें कुछ शब्द जोड़ दिये गये हैं—एक तो 'धोखे से' शब्द 'दबाव और अनुचित प्रभाव' के साथ जोड़ दिया गया है और दूसरा नाबालिग के बारे में जोड़ा गया है। वास्तव में यह प्रस्ताव किसी और कमेटी ने किसी-न-किसी रूप में रखा था और साधारणत: लोगों का ख्याल यही है कि यह खंड इस रूप में पास हो—किसी भी 18 वर्ष से कम-से-कम अवस्था के नाबालिग को एक धर्म से दूसरे में प्रविष्ट कराने पर इस धर्म-परिवर्तन को कानून से जायज नहीं माना जायेगा। कानून से जायज न माने जाने का परिणाम यह होगा कि यद्यपि एक व्यक्ति धोखे, दबाव या अनुचित दबाव अथवा नाबालिगी की अवस्था में धर्मान्तरित कर दिया गया है, फिर भी कानून की दृष्टि से उसका अपने पहले धर्म से ही सम्बन्ध, जारी रहेगा और उसके कानूनी अधिकार इस धर्मान्तर के होते हुए भी अक्षुण्ण रहेंगे। इस प्रस्ताव के पीछे विचार यह है कि प्राय:, अगर धर्मान्तर धोखे, अनुचित प्रभाव या नाबालिगी की अवस्था में हुआ है तो धर्मान्तरित व्यक्ति की कानूनी स्थिति में परिवर्तन हो जाता है, और उसके कुछ अधिकार तो चले ही जाते हैं। इसका असर यह होगा कि उसके अधिकार बिल्कुल वैसे ही कायम रहेंगे जैसे उस समय के पहले थे, जब उसे धोखे या दबाव या अनुचित प्रभाव द्वारा अथवा नाबालिगी की अवस्था में धर्मान्तरित किया गया था।

यदि माननीय सदस्य चाहें तो मैं पूरा खण्ड पढ़ दूंगा। पूरा खण्ड इस रूप में रखा गया है—

> ''किसी भी व्यक्ति को धोखे या दबाव से या अनुचित प्रभाव डालकर, अथवा 18 वर्ष से कम अवस्था के नाबालिग को, एक धर्म से दूसरे में प्रविष्ट कराने पर उसे कानून से जायज नहीं माना जायेगा।''

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): क्या मैं आपसे इस बात की व्याख्या करने का अनुरोध कर सकता हूं कि ''अनुचित प्रभाव'' का क्या अर्थ है? क्या यह उस अर्थ में है जो कंट्राक्ट एक्ट में आया है या इसे सामान्य अर्थ में समझा जायेगा?

***श्री के.एम. मुंशी:** मेरे लिये यह कहना कठिन है; पर मुझे निश्चय है कि 'धोखा' तो सारे संसार में और कानूनी अधिकारों की सभी प्रणालियों में धोखा ही है। दबाव और अनुचित प्रभाव इन दोनों में भारत में या अन्यत्र कोई अन्तर नहीं है। थोड़ा छाया-अन्तर हो सकता है; पर स्वतंत्र भारत इसकी व्याख्या करेगा और उसका अर्थ जहां तक मैं समझ सकता हूं, ऑक्सफोर्ड के शब्द-कोश के अर्थ से जुदा न होगा।

***श्री फूलसिंह** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्री मुंशी ने जो संशोधन पेश किया है उसे देखते हुए मेरा संशोधन यहां ठीक न बैठेगा। पर मेरा सुझाव है कि दबाव डालकर धर्मान्तर करने को जुर्म करार दिया जाना चाहिए। मेरी राय है कि वह इसमें ऐसा संशोधन कर सकते हैं।

***माननीय श्री जगजीवन राम:** मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं। (द्वितीय अतिरिक्त सूची का नं. 72)

***अध्यक्ष:** द्वितीय अतिरिक्त सूची का संशोधन नं. 73।

***श्री आर.के. सिधवा:** यह एक नया खंड है। यह बाद में लिया जा सकता है।

***श्री एफ. आर. एन्थॉनी** (बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा संशोधन श्रीयुत मुंशी के संशोधन से खास सम्बन्ध रखता है। ''या 18 वर्ष से कम अवस्था के नाबालिग को'' इस अंश की जगह मैं ये शब्द रखना चाहता हूं—''सिवा इस अवस्था के, जहां माता-पिता या उनमें जो भी जीवित हो वह पहले धर्मान्तरित हो और बच्चा अपने धर्म में रहना न पसन्द करता हो।'' लगभग इसी रूप में ''नाबालिग सब-कमेटी'' इसे स्वीकार किया था। हमने इस पर लम्बी बहस की थी और यह अनुभव किया था कि जिस रूप में मैं इसे पुन: रखना चाहता हूं वह इस विचारणीय विषय के लिए सर्वोत्तम होगा।

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि धोखे या दबाव से अथवा अनुचित प्रभाव डालकर जो धर्मान्तर किया गया हो वह कानून से जायज नहीं माना जाना चाहिए। मेरी दिलचस्पी केवल इस सवाल से है और वह भी सिद्धान्त के ऊपर। मेरा सम्प्रदाय न प्रचार करता है, न धर्मान्तर और न हम धर्मान्तरित ही हैं। पर मैं इस बात को मानता हूं कि करोड़ों ईसाई अपने धर्म के प्रचार सम्बन्धी अधिकार के प्रश्न पर गहरी दिलचस्पी रखते हैं। मैं मुख्य पार्टी को बधाई देता हूं कि ऐसे विवादग्रस्त ढंग के प्रस्ताव में भी वह ''अपने धर्म के प्रचार और पालन का अधिकार'' कायम रख सके। यह करके एक हाथ से यह मुख्य बुनियादी अधिकार देकर—जो ईसाइयों के अधिकारों में सबसे अधिक बुनियादी है, दूसरे हाथ से कि 18 वर्ष से कम अवस्था के नाबालिग का इस शर्त द्वारा उसे छीन मत लीजिए। या अगर आप इस खास आदेश को रखना चाहते हैं या यदि आप नाबालिग के धर्मान्तरकरण पर बिल्कुल रुकावट ही डालना चाहते हैं तो इससे धर्मान्तर करने पर ही प्रतिबन्ध लग जाता है। इससे तो आप धर्मान्तरित करने के अधिकार को ही छीने लेते हैं। क्योंकि इसका परिणाम क्या होगा? कोई भी वयस्क बाप, चाहे जितना भी हृदय से चाहे ईसाई धर्म अकेले न ग्रहण कर सकेगा, क्योंकि इस आदेश द्वारा तो आप उस मां-बाप को उसके बच्चे से अलग कर देते हैं। इस आदेश के द्वारा आप कहेंगे कि यद्यपि मां-बाप ईसाई धर्म ग्रहण कर सकते हैं, पर उनके बच्चे अपने मां-बाप का धर्म और पालन-पोषण न प्राप्त कर सकेंगे। इससे तो आप पारिवारिक

जीवन की जड़ ही काट देंगे। मैं कहता हूं यह तो स्वाभाविक कानून और न्याय की सामान्य धारणा के भी विरुद्ध होगा। आपकी भावना धर्मान्तरकरण के विरुद्ध हो सकती है और धर्म-प्रचार के भी। पर जब आप उसे स्वीकार कर लेते हैं तो मेरा निवेदन है कि पारिवारिक जीवन पर कुठाराघात न कीजिए। यह अधिकार सारे संसार के देशों में स्वीकार किया गया है माता-पिताओं को अधिकार है कि वह अपने बच्चों को जिस धर्म में चाहें दीक्षित करें। आपको सुरक्षाएं प्राप्त हैं। आप यह नियम बना चुके हैं कि अनुचित प्रभाव डालकर, धोखे से या दबाव डालकर किया गया धर्मान्तर कानून द्वारा मान्य नहीं होगा। मैं और आगे हूं और संसार के अन्य देशों के विपरीत यह भी मानने को तैयार हूं कि बड़े होने पर उन बच्चों की इच्छा हो तो वह अपने पहले धर्म को ग्रहण कर सकते हैं। शब्दावली इस प्रकार है—''और बच्चा पहले धर्म में रहना नहीं पसन्द करता''। अगर माता और पिता—दोनों ही धर्मान्तरित हो चुके हैं और वे अपने बच्चों का लालन-पालन ईसाई धर्मानुसार करना चाहते हैं, और वे बच्चे समझदार होने पर यह इच्छा प्रकट करें कि मां-बाप धर्मान्तर होते हुए भी वे ईसाई के रूप में अपना लालन-पालन नहीं चाहते, तो मेरे बताये प्रतिबंध के अनुसार उनका पालन-पोषण ईसाई धर्म में नहीं होगा।

''माता-पिता में जो जीवित हो'' शब्द भी इसीलिए मैंने जोड़े हैं। अगर आप दोनों ही पर प्रतिबंधन लगा देंगे तो क्या होगा? मान लीजिए एक विधवा ईसाई धर्म ग्रहण करती है, और वह अपने बच्चों को ईसाई धर्म में पालन-पोषण करना चाहती है और वे बच्चे भी वैसा ही चाहते हैं, तो आप उनके मार्ग में रुकावट डाल रहे हैं। अगर आप ''माता पिता में जो जीवित हो'' शब्द नहीं रखना चाहते, अगर पिता विधुर होने की अवस्था में ईसाई धर्म ग्रहण करना चाहता है और उसके बच्चे ईसाई के रूप में ही अपना पालन-पोषण चाहते हैं, तो यह कहा जा सकता है कि चूंकि दोनों मां-बाप जीवित नहीं हैं इसलिये पिता उन बच्चों का अपने धर्म के अनुसार पालन-पोषण नहीं कर सकता। वह अपने-आप बच्चों से अलग हो जायेगा।

मैं समझता हूं कि इस सभा में कुछ वर्ग धर्मान्तरकरण के प्रश्न पर कैसी गहरी भावना रखते हैं पर मेरा कथन है कि जब आप यह धर्म-प्रचार का अधिकार स्वीकार कर चुके हैं तो स्वाभाविक कानून और न्याय की अनुरूपता का ख्याल रखते हुए पारिवारिक जीवन के सिद्धान्त को भी स्वीकार कीजिए।

***श्री पी.आर. ठाकुर:** महाशय, मैं दलित वर्ग का एक सदस्य हूं। बुनियादी अधिकार का यह विधान मेरे समाज की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि धर्मान्तरकरण के शिकार अधिकांशत: दलित वर्ग के लोग ही होते हैं। अन्य धर्मों के उपदेशक उनके पास जाकर उनके अज्ञान का अनुचित लाभ उठाते हैं, सभी तरह के प्रलोभन देकर उन्हें अन्तत: धर्मान्तरित कर लेते हैं। मैं श्री मुन्शी से यह जानना चाहता है कि क्या ''धोखे'' में यह सभी बातें

[श्री पी.आर. ठाकुर]

आ जाती हैं। अगर नहीं आतीं तो मैं श्री मुन्शी से कहूंगा कि इस खण्ड को फिर से लिखकर तैयार करें जिससे इस तरह के धोखों का प्रयोग दलित वर्ग पर न किया जा सके। मैं तो इसे अवश्य ही 'धोखा' कहूंगा।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्स राय** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस रूप में खण्ड एडवाइजरी कमेटी से निकला है वही काफी है और उसमें कोई संशोधन नहीं होना चाहिए। इस विधान द्वारा बारह या तेरह साल का नाबालिग अठारह वर्ष की अवस्था तक अपनी इच्छा काम में नहीं ला सकता। कानून में अवस्था की यह सीमा बिल्कुल ठीक हो सकती है। किन्तु यह सोचना कि अठारह वर्ष के युवक के विवेक नहीं होता इसलिए वह अपना विश्वास नहीं प्रकट कर सकता, गलत है। प्रश्न के इस पहलू पर भी पूर्ण रूप से विचार करना होगा; धर्मान्तरकरण का एक आत्मिक पहलू भी होता है। धर्मान्तर का अर्थ यही नहीं है कि एक आदमी अपना धर्म बदल लेता है या दूसरा फार्म ग्रहण कर लेता है। जैसे कोई हिन्दू ईसाई हो जाता है। पर इस धर्मान्तरकरण का आत्मिक पहलू भी देखना चाहिए। उसमें मनुष्य की आत्मा का ईश्वर से जो सम्बन्ध हो जाता है वह भी देखना चाहिए। इस सभा को इस बात पर भी विचार कर लेना चाहिए। मैं जानता हूं कि ऐसे भी लोग हैं जो सांसारिक लाभ के लिए भी धर्म-परिवर्तन करते हैं, पर ऐसे भी हैं जो आत्मशक्ति से प्रेरित होकर धर्म-परिवर्तन करते हैं जब कोई लड़का यह अनुभव करता है कि भगवान् उसे दूसरा धर्म स्वीकार करने का आदेश देता है तो उसके वैसा करने में कोई कानून बाधक नहीं बनना चाहिए। इन नवयुवकों की आत्मा को, जो आध्यात्मिक दृष्टिकोण से धर्म-परिवर्तन करते हैं, दूसरा धर्म ग्रहण करने से नहीं रोकना चाहिए और उन्हें अपने अधिकार का उपयोग अपनी कानूनी स्थिति बदलने और धर्म-परिवर्तन करने के लिए करने देना चाहिए। हम जानते हैं श्रीमान् ईसाई मजहब के इतिहास में ऐसे युवक हुए हैं और कई को तो मैं व्यक्तिगत रूप में जानता हूं जो अपने विश्वास और श्रद्धा के कारण ईसाई हुए हैं और जो उसके लिए सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हैं मैं खुद पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ईसाई बनाया गया था। उस समय मैंने भगवान् की आवाज को मुझे बुलाते सुना था। मैं उसके लिए संसार में सब कुछ छोड़ने को तैयार था। मैं मौत तक स्वीकार करने को तैयार था। जिस युवक के दिलों में परमात्मा की ऐसी पुकार पहुंचती है उसे कानून के द्वारा धर्म बदलने से क्यों रोका जाये और वह अपना दूसरा नाम क्यों रखे जबकि वह भगवान् के सामने यह अनुभव करता है कि उस पर परमात्मा ने वैसा करने के लिए प्रभाव डाला है और वह उसके लिए जान भी देने को तैयार है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखने पर नाबालिग सम्बन्धी वह संशोधन बिल्कुल गलत है। विवेक की दृष्टि से यह कहना बिल्कुल गलत है कि बारह से अठारह वर्ष तक के लड़के लड़कियों को भगवान् के सामने अपने विवेक का उपयोग न करने दिया जाये। इससे उनकी आत्मा दब जायेगी। वह भगवान्

के सामने अपने धार्मिक विश्वास का उपयोग करना चाहते हैं। इसलिए मैं इस संशोधन के वर्तमान रूप का विरोधी हूं। खंड को पहले की भांति ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाना चाहिए। धर्म-परिवर्तित माता-पिता के बच्चों के धर्मान्तरकरण के कानूनी तथा अन्य पहलू पर श्री एन्थॉनी विवाद कर चुके हैं। कुछ नाबालिगों को उनके निजी विश्वास का अनुसरण करने के लिए छोड़ देना चाहिए कि वह अपने विश्वास के अनुसार काम करे और उन्हें आत्मविश्वास के विरुद्ध काम करने को विवश न करें। अगर वे स्वयं अपनी पहली कानूनी स्थिति की परवाह नहीं करते तो उन्हें कानून क्यों नहीं इच्छानुसार चलने देता? उन्हें धर्म-परिवर्तन करने से क्यों रोका जाता है? उनकी आत्मा को क्यों दबाया जाता है? यह महत्त्वपूर्ण बात है, जिस पर इस सभा को विचार करना है। इस स्वतंत्रता को मैं युवकों का बुनियादी अधिकार समझता हूं। कोई भी ऐसा कानून नहीं बनना चाहिए जो अच्छी आध्यात्मिक-शक्ति के विरुद्ध काम करता हो। भारत धर्मों का देश है, और यहां धार्मिक स्वतंत्रता है। यदि वह संशोधन इस सभा में पास हो जाता है तो उसका यह अर्थ होगा कि बुराई की शक्तियां को रोकने के ख्याल से हमने वास्तविक धार्मिक स्वतंत्रता भी खो दी जो इस देश के युवकों को मिलनी चाहिए। इसलिए मैं तो इस सिद्धान्त के ही विरुद्ध हूं कि युवकों पर जोर डालकर उन्हें उनके धार्मिक विश्वास के अनुसार आचरण करने से रोका जाये। मेरा सुझाव है महोदय, कि यदि श्री एन्थॉनी के संशोधन में 'या जब नाबालिग स्वयं धर्म बदलना चाहे तो उसे बचाया जाये' यह शब्द शामिल हैं तो मैं इस संशोधन का विरोध न करूंगा। मैं अनुचित प्रभाव, दबाव या धोखे द्वारा धर्म बदलने का विरोधी हूं। जब हम इन बुराइयों के विरुद्ध कानून बनाते हैं तो हमें यह बात सावधानी के साथ देखनी चाहिए कि वह कानून युवक-युवतियों की विवेक-बुद्धि का विरोध तो नहीं करता, क्योंकि आखिर उन्हें भी तो स्वतंत्रता की जरूरत है।

श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः सभापति जी, जो भाषण यहां हमारे ईसाई भाइयों की तरफ से हुए हैं, उन्हें सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है। उनमें से कुछ ने इस बात की चर्चा की कि हम लोगों ने यहां इस सभा में यह स्वीकार कर लिया है कि हर एक को अपने धर्म को फैलाने का और दूसरे धर्म से अपने धर्म में लाने का अधिकार है। एक धर्म से दूसरे धर्म में लाना और इस तरह के काम के पीछे पड़ना हम कांग्रेस वालों को अनुचित लगता है और हम उसके पक्षपाती नहीं हैं। समझते हैं कि इस बात के पीछे पड़ना कि एक आदमी दूसरे धर्म में लाया जाये, व्यर्थ की बात है। लेकिन केवल कुछ लोगों के अनुरोध से, जिन्हें हम राष्ट्रीय कामों में अपने साथ रखना चाहते हैं, हमने यह बात स्वीकार कर ली। अब इसके बाद यह कहना कि उनको अधिकार है कि वह छोटे-छोटे बच्चों को दूसरे धर्म में लायें, यह चीज क्या है? क्या बात है? मुझे बहुत ताज्जुब होता है। जो 18 वर्ष के नीचे का बच्चा है उसको आप समझा-बुझा के उसका धर्म-परिवर्तन करा सकते हैं मगर वह कच्ची बुद्धि का बालक है और यह काम साधारण रीति से और कानूनी दृष्टि से उचित नहीं समझा जाता है। अगर वह

[श्री पुरुषोत्तमदास टंडन]

18 वर्ष का बालक एक अपनी 100 रुपये की कोठरी किसी के नाम लिख दे तो वह नाजायज है। लेकिन हमारे भाई आकर कहते हैं कि उसको इतनी बुद्धि है कि वह अपना धर्म परिवर्तन कर सकता है। यानी धर्म की कीमत 100 रुपये की कोठरी से भी कम है। उचित यह है कि बालक की जब समझ-बूझ पक्की हो जाये तब ही वह जाब्ते से धर्म-परिवर्तन कर सके।

हमारे एक भाई ने यह कहा कि हमने दाहिने हाथ से ईसाइयों को जो दिया है वह बांये से हम छीन रहे हैं। यदि हम उनको यह अधिकार नहीं देते कि जो बच्चे अपने माता-पिताओं के साथ हैं उनका धर्म-परिवर्तन वह माता-पिताओं के धर्म-परिवर्तन के साथ कर लें। हमने उनको दाहिने हाथ से जो चीज दी थी वह यह है कि वह ईमानदारी के साथ समझ-बूझ के सहारे और लोगों की भावनाएं बदलकर उन्हें अपने धर्म में ला सकें। coercion, fraud, undue influence ये तीनों शब्द आपने अपवाद के रूप में मंजूर किये। ये बड़ी उम्र के लोगों के लिये हैं। लेकिन छोटे बच्चों के लिये यह शब्द नहीं लगता उनको किसी धर्म से दूसरे धर्म में लाना हर दशा में Coercion या undue influence है। आप मेरा मतलब समझे। छोटे-छोटे बच्चे कैसे धर्म बदल सकते हैं। अभी उनको बुद्धि नहीं है। वह आपकी शास्त्रीय बात को नहीं समझते हैं। अगर यह धर्म परिवर्तन करते हैं तो वह किसी-न-किसी असर से करते हैं और यह असर उचित नहीं है। अगर कोई ईसाई किसी हिन्दू बालक को अपने साथ रखता है और उसके साथ दया का बर्ताव करता है तो यह सम्भव है कि वह हिन्दू बालक उसके साथ रहना पसंद करे। इसे हम नहीं रोक रहे हैं। धर्म परिवर्तन वह ठीक उम्र पाने पर ही कर सकता है। अगर माता-पिता धर्म परिवर्तन करते हैं तो क्यों आवश्यक है कि बच्चे का धर्म भी उन्हीं के साथ जाये। अगर माता-पिता का असर उसके ऊपर है तो जब बच्चा बड़ा होगा तब वह धर्म परिवर्तन कर सकता है। यह मेरा कहना है।

आपकी अनुमति से कुछ शब्द अंग्रेजी में भी कहना चाहता हूं, जिससे हमारे वह भाई जो मेरी हिन्दी वाणी ने न समझे हों वह भी समझ लें।

*महोदय, जिस तरीके पर हमारे कुछ ईसाई मित्रों ने नाबालिगों को धर्मान्तरित करने का दावा पेश किया है उससे मुझे आश्चर्य है। धर्मान्तरित करने का अधिकार हमने मान लिया है। साधारणत: हम कांग्रेसजन इसे उचित नहीं समझते—मैं स्पष्टता से कहता हूं—कि लोग दूसरे धर्मावलम्बियों को धर्म में लाने की कोशिश में सदा दौड़-धूप करते रहे। पर हम अपने ईसाई बन्धुओं को—उन बंधुओं को जो समझते हैं कि धर्मान्तरित रहने का अधिकार मिलना चाहिए—अपने साथ रखना चाहते हैं और इसीलिए उनके आग्रह पर धर्म-प्रचार का अधिकार यहां रखा गया है। वे लोग जानते हैं कि हम इसके विरुद्ध हैं फिर भी हमने इसे स्वीकार किया है।

***श्री सेसिल एडवर्ड गिब्बन** (मध्यप्रान्त-बरार : जनरल): यह गलत बात है।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** महाशय, मैं एक कांग्रेसी के रूप में बोल रहा हूं। मैं कहता हूं कि अधिकांश कांग्रेसी धर्मान्तर करने का यह ढंग नहीं पसन्द करते। *(बाधा)*, पर अपने ईसाई दोस्तों को अपने साथ रखने के लिए.....।

***श्री सेसिल एडवर्ड गिब्बनः** मुझे इस पर व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति है, महाशय।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति इस पर नहीं हो सकती। मन्तव्य सम्बन्धी आपत्ति हो सकती है।

***श्री सेसिल एडवर्ड गिब्बनः** मैं नहीं समझता कि श्रीमान्, वक्ता महोदय सभी कांग्रेसियों की ओर से बोलने की क्षमता रखते हैं।

***कुछ माननीय सदस्यः** क्यों नहीं?

***अध्यक्षः** यह कोई व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति नहीं है।

***श्री बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): वक्ता महाशय को अधिकांश कांग्रेसियों की ओर से बोलने का पूरा अधिकार है। निश्चय ही वह इसके अधिकारी हैं।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** मैं अपने इन दोस्त की अपेक्षा कांग्रेसियों को ज्यादा जानता हूं। मैं उनकी भावनाओं को शायद अपने इन दोस्त से कहीं अधिक घनिष्टता के साथ जानता हूं। और मैं यह समझता हूं कि अधिकांश कांग्रेसी 'प्रचार' (Propagation) शब्द रखने के भी विरुद्ध हैं, पर अपने ईसाई दोस्तों के लिहाज से हमने यह शब्द रहने दिया है। पर अब हमसे कहना कि बच्चों को भी धर्मान्तरित होने दिया जाये, मेरे ख्याल में बहुत दूर जाना है, श्रीमान्। यह तो हो सकता है कि कई बच्चों वाले मां-बाप किसी और धर्म में दीक्षित कर लिये जायें, पर यह जरूरी नहीं है कि इनके सभी बच्चों के साथ, जो धर्म को कुछ भी नहीं समझते, धर्मान्तरित व्यक्ति के समान व्यवहार किया जाये। मेरा निवेदन है कि यह बिल्कुल जरूरी नहीं है। इसके बारे में तो अभिभावकत्व का कानून ही सब कुछ देख लेगा। इन बच्चों की देख-रेख के लिये अन्य अभिभावक नियुक्त किये जा सकते हैं और जब वे बड़े हो जायें और अगर यह अनुभव करें कि ईसाई धर्म ऐसा है जो उनके मन को जंचता है तो वे उसे ग्रहण कर सकते हैं। यह भी मेरे ईसाई दोस्तों के लिए बहुत है।

मैं समझता हूं कि कुछ कानूनी लोग कठिनाइयां खड़ी कर सकते हैं। और इसमें कानूनी कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं, पर अभिभावकत्व सम्बन्धी सामान्य कानून से इसका काम चल जायेगा। जब हम यह कहते हैं कि नाबालिगों का धर्मान्तर नहीं किया जा सकता तो इसका यह अर्थ होता है कि जब मां-बाप दूसरा धर्म ग्रहण करें और उनके कई ऐसे बच्चे हैं, जिनकी देख-रेख करनी है, तो

[माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन]

देश का कानून उनकी देख-रेख से वंचित न करेगा। अभिभावकत्व संबंधी कानून आप कभी काम में ला सकते हैं और आप चाहें तो इसके सम्बन्ध में मौजूद वर्तमान कानून में परिवर्तन भी कर सकते हैं जिससे ऐसे मामलों में नाबालिगों की देख-भाल की जा सके। इसलिए मैं श्री मुंशी का संशोधन स्वीकार करने में कोई कानूनी कठिनाई नहीं देखता और उसका हृदय से समर्थन करता हूं।

(श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त बोलने को खड़े हुए।)

***श्री रामनाथ गोयनका** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष जी, मैं व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति करने के लिए खड़ा हुआ हूं।

***अध्यक्ष:** पर श्री दत्त आपसे पहले ही व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति करने को खड़े हुए हैं।

श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त (बंगाल : जनरल): यदि पूर्व वक्ता न बोलते तो मैं न उठता.....।

***अध्यक्ष:** मैं समझा, आप व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति कर रहे हैं।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त:** नहीं महोदय, मैं व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति नहीं उठा रहा हूं।

***अध्यक्ष:** तो कृपया ठहरिए। हां, श्री गोयनका।

***श्री रामनाथ गोयनका:** मेरी व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति यह है महाशय, कि हमारे पास किये हुए खण्ड 13 के अंतर्गत सभी व्यक्तियों को अपनी आत्मिक स्वतंत्रता का समान अधिकार है। पर 'सभी व्यक्तियों' में वही आ सकते हैं जो समझदारी की अवस्था प्राप्त कर चुके हों। यह जरूरी नहीं कि वह समझदार होने के पहले अठारह वर्ष के हो ही चुके हैं। बारह, पन्द्रह, सोलह या सत्रह वर्ष की उम्र भी हो सकती है। अगर हम खण्ड 17 पास कर लें और अठारह की उम्र वैधानिक हो जाये, तो वह खण्ड 13 के अनुसार ही होगा। 13वें खण्ड में हम ''सभी व्यक्तियों को'' शब्द कह चुके हैं। मैं समझता हूं कि वे अठारह वर्ष की उम्र के पहले भी विवेकशील बन सकते हैं। इसलिए यदि हम खण्ड 17 पास करते हैं और 18 वर्ष की अवस्था निर्धारित कर देते हैं, तो वह खण्ड 13 के साथ मेल नहीं खायेगा।

***अध्यक्ष:** पर व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति क्या है?

(हंसी)

***श्री रामनाथ गोयनका:** मेरी व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति यह है कि यह खण्ड 13 के प्रतिकूल होगा जिसे हम पास कर चुके हैं।

***अध्यक्ष:** यह तो उसके गुण दोष के आधार की बात हुई। आप यह नहीं कहते हैं कि सभा इस नियम को विचारार्थ नहीं ले सकती। चूंकि यह एक पूर्ववर्ती नियम से बेमेल है।

***श्री रामनाथ गोयनका:** मेरा कहना है कि यह संशोधन नियम के खिलाफ है।

***अध्यक्ष:** कौन संशोधन?

***श्री रामनाथ गोयनका:** श्रीयुत मुंशी द्वारा उपस्थित संशोधन। यह नियम के खिलाफ है। यदि आप मेरी इस बात से सहमत हैं कि विवेक-बुद्धि की उम्र 18 वर्ष से पहले की होनी चाहिए।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): पर मिस्टर मुंशी वह अवस्था पार कर चुके हैं।

***श्री रामनाथ गोयनका:** यह प्रश्न श्री मुंशी के अठारह वर्ष से अधिक होने का नहीं है। *(हंसी)*

***अध्यक्ष:** मैं यह समझता हूं कि श्री गोयनका ने जो व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति की है वह यह है कि हम खण्ड 13 के बारे में पहले ही निश्चय कर चुके हैं इसलिए सभा को श्री मुंशी के संशोधन पर विचार करने का अधिकार नहीं है; पर मेरा विश्वास है कि यह सभा अपने निश्चयों में सदा ही संशोधन कर सकती है।

***श्री रामनाथ गोयनका:** अवश्य ही महाशय, पर जब तक खण्ड 13 अपने वर्तमान रूप में मौजूद है, यह संशोधन अव्यवस्थित होगा।

***श्री के.एम. मुंशी:** क्या मैं इसका जवाब दे सकता हूं, महोदय?

***अध्यक्ष:** हां।

***श्री के.एम. मुंशी:** महाशय, मेरे ख्याल में मेरे मित्र श्री गोयनका को वाक्य-रचना के क्षेत्र में जाने का साहस नहीं करना चाहिए था। अगर आप खण्ड 13 को देखें तो आप देखेंगे कि वह इस प्रकार है—

> ''सार्वजनिक शान्ति, सदाचार या जन-स्वास्थ्य और इस भाग के दूसरे आदेशों के विपरीत न जाते हुए सभी लोगों को अन्त:करण की स्वतंत्रता होगी और किसी धर्म का अनुयायी होने का, उसका आचरण करने और उसको फैलाने का समान रूप से अधिकार होगा।''

यह नियम सामान्यत: इस विभाग के अन्य नियमों के आधीन है और अगर सभा यह खण्ड पास करती है तो वह स्वतंत्रता इस खास खण्ड की शर्त पर निर्भर है। यह आइने की तरह साफ है।

[श्री एन. अनन्तशयनम् आयंगर]

***श्री एन. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं श्री गोयनका की व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति का विरोध दूसरे रूप में करना चाहता हूं। इस व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति के प्रस्तावक का कहना है कि वह इसमें आपत्ति नहीं देखते कि विवेक की अवस्था आ जाने पर कोई धर्मान्तर करे। पर कहीं भी विवेक की अवस्था की परिभाषा नहीं दी गई है। इससे तो यह सभा यह कहने को स्वतंत्र है कि विवेक या समझदारी की अवस्था 18 की है। इसलिए वास्तव में व्यवस्था-सम्बन्धी कोई आपत्ति नहीं है, अथवा इस व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति में कोई आपत्ति की बात है ही नहीं।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि यह संशोधन विधि-निहित है। अब हम प्रस्ताव और संशोधन दोनों पर बहस कर सकते हैं।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्तः** अध्यक्ष महाशय, मैं समझता हूं कि यह सारा खंड 17, फंडामेंटल राइट्स कमेटी (बुनियादी अधिकार समिति) में नहीं जाना चाहिए। और मैं खुश होऊंगा यदि सारा ही खंड निकाल दिया जाये। मैं जानता हूं कि इसे बुनियादी अधिकारों के अन्तर्गत संख्याबद्ध करने के कारण क्या हैं। क्योंकि हम अब वर्तमान तैयारी (Setting) के अन्तर्गत काम कर रहे हैं। पर चूंकि इसकी गिनती बुनियादी अधिकारों में की ही जायेगी इसलिए यह देखने की जरूरत है कि या तो श्री मुंशी का संशोधन स्वीकार कर लिया जाये या श्री एन्थॉनी का। मिस्टर एन्थॉनी यह चाहते हैं कि बालिग होने पर अभीष्ट धर्म ग्रहण करने की मर्जी मिलनी चाहिए जैसा कि मुसलमानों को बालिग होने पर अपनी नाबालिगी की शादी रद्द करने का अधिकार है। वह धर्मान्तरित मां-बाप के बच्चों को भी वैसा ही अधिकार दिलाना चाहते हैं। बालिग होने पर वह बच्चा यह घोषित करने का अधिकारी होगा कि वह अपना पहला धर्म चाहता है या अपने धर्मान्तरित माता-पिताओं के धर्म में सम्मिलित होगा। मैं नहीं समझता हूं कि बड़े होने पर बच्चे को यह अधिकार क्यों नहीं दिये जाने चाहिए। बालिगी की अवस्था प्राप्त करने पर हिन्दू होने की हालत में वह कह सकता है कि वह हिन्दू-धर्मावलम्बी रहेगा या यदि उनके मां-बाप ईसाई हुए हैं तो वह ईसाई बनेगा। मेरे ख्याल से यह अधिकार छीना नहीं जाना चाहिए। यह कैसे दिया जाये, इसका निर्णय ड्राफ्टिंग कमेटी करे या फंडामेंटल राइट्स कमेटी के ऊपर छोड़ दिया जाये कि वह देखे कि यह खंड रहना चाहिए या नहीं और यदि रहना चाहिए तो किस रूप में।

बैठने के पहले मैं यह कहना चाहता हूं कि श्री टंडन का यह कथन सही नहीं है कि अधिकांश कांग्रेसी 'प्रचार' शब्द यहां नहीं रखना चाहते। इस विषय पर कल वाद-विवाद हो चुका है। इसलिए श्री टंडन का यह कथन ठीक नहीं है।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहूः** अध्यक्ष जी, मैं बुनियादी अधिकार सम्बन्धी इस खंड का स्वागत करता हूं। पर मुझे आरम्भ में ही शंका हो रही है कि अल्पसंख्यक किसे कहा जाये। मैं समझता हूं कि वह सन्देह बाद में स्पष्ट किया जा सकता

है। आज जो स्थिति है, मैं सभा से कहना चाहूंगा कि मिदनापुर जिले में जिसके आधे निवासी उड़िया बोलने वाले हैं—सन् 1891 ई. से सन् 1931 ई. तक भाषा का हनन किया गया है। मैं उसके सम्बन्ध में मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट दे सकता हूं। सन् 1891 ई. में उड़ियापुर जिले में छः लाल उड़िया-भाषी थे। दस वर्ष बाद सन् 1901 ई. में वह तीन लाख से भी कम हो गये। इस तरह छः से तीन लाख हुए और सन् 1911 ई. में.....।

***अध्यक्षः** श्री साहू, हम यहां भाषा के प्रश्न पर विचार नहीं कर रहे हैं। हम खंड 17 पर विचार कर रहे हैं जो धर्म के सम्बन्ध में है, खंड 18 पर नहीं।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहूः** मुझे अफसोस है।

***श्री रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे अफसोस है कि बहस ने ऐसा रूप धारण कर लिया है मानो यह अल्पसंख्यकों का ही प्रश्न हो, और उसके परिणामस्वरूप इसमें बहुत गर्मी आ गई है जिसका हममें से बहुतों को खेद है। महाशय, जब इस विषय पर कमेटी के समय बहस हुई थी तो यह अल्पसंख्यकों के प्रश्न से बिल्कुल पृथक् ढंग का था और सर अल्लादी जैसे ऊंचे श्रेणी के विद्वानों ने इस प्रश्न में सन्निहित कानूनी कठिनाइयां हमें समझाईं। जहां तक अल्पसंख्यकों के अधिकार का सम्बन्ध है, मैं कह सकता हूं कि खंड 13 पर जिस रूप में सभा ने विचार किया है उससे अल्पसंख्यकों को प्रोत्साहन मिला है कि हमें लड़ने-झगड़ने या कड़ा आश्वासन मांगने की आवश्यकता ही नहीं रही है। उस रुख का असर अल्पसंख्यकों पर भी इस प्रकार का पड़ना चाहिए कि उनका रुख भी विश्वास का हो जिससे वाद-विवाद और सुसम्बन्ध की प्रेरणा मिले। मैं श्री एन्थॉनी के इस कथन से सहमत हूं कि यह प्रश्न सिद्धांत के व्यापक स्वरूप और पारिवारिक अधिकार का है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं उसी दृष्टिकोण से बोलता हूं। यह बालिगों के धर्मान्तरकरण का सवाल, न केवल बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों के परस्पर सम्बन्ध पर असर डालता है, बल्कि इसका अल्पसंख्यकों के परस्पर सम्बन्ध पर भी असर पड़ता है। इससे विभिन्न ईसाई दल के परस्पर सम्बन्ध पर भी जैसे कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय पर भी असर पड़ सकता है। पर सभी वर्गों में किसी एक मनुष्य का अपने परिवार पर प्रभाव अधिकांश रूप में बुनियादी अधिकार के रूप में होना चाहिए। इन बुनियादी अधिकारों में ऐसी कोई बात नहीं है जो परिवार की रक्षा प्रोत्साहन और सम्बल की स्पष्ट वृद्धि करती हो और वास्तव में मैं तो इसे इस समय आवश्यक भी नहीं समझता, क्योंकि वह न्याग्य अधिकार नहीं है। कुछ विधान ऐसे हैं जिनके द्वारा परिवार की रक्षा और प्रोत्साहन के लिए राज्य की आकांक्षा स्पष्ट घोषित कर दी गई है। मैं समझता हूं कि बुनियादी अधिकारों के दूसरे भाग में जो अंश न्याय्य नहीं है, कुछ ऐसी घोषणाएं और स्वीकृतियां, पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध सुविधाओं और परम्परागत अधिकार के सम्बन्ध में रहनी चाहिए। शायद यह समझा जाये कि हमारे देश में इसकी आवश्यकता

[श्री रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा]

इसलिए नहीं है कि हममें प्रबल पारिवारिक भावना स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। हममें न केवल व्यक्तिगत और इकाई के परिवार हैं प्रत्युत सम्मिलित परिवार-प्रथा भी मौजूद है। मेरा विश्वास है कि यह वाद-विवाद संयुक्त परिवार की पृष्ठभूमि से प्रभावित हुआ है। मेरा ख्याल है कि टंडन जी जब धर्मान्तरित व्यक्तियों के नाबालिग बच्चों के धर्मान्तर करने की बात पर बोल रहे थे तो उनके मन में संयुक्त परिवार प्रथा का चित्र था जिसमें लोग ऐसे बच्चों का पालन-पोषण करने वाले मिल जाते हैं। पर हम यह कानून सभी तरह के लोगों के लिए बना रहे हैं—उन लोगों के लिए भी जो संयुक्त परिवार में नहीं—इकाई के परिवार में रहते हैं। हम उनके लिए कानून बना रहे हैं इसलिए इसमें कुछ व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो अंतिम विश्लेषण में मां-बाप के अधिकार की रक्षा करें—दोनों मां-बाप की अथवा जो जीवित रहे उसकी खासकर, और जैसा कि श्री एन्थॉनी ने कहा है जिन माताओं की गोद में बच्चे हैं, उनकी। ऐसे बच्चों को उनके मां-बाप की गोद से ले लेना, जो पार्थिव एवं न्याय-सम्बन्धी सभी दृष्टियों से उनके साथ एक बन चुका है, एक ऐसा कानून बनाना है जो निश्चय ही परिवार के अधिकार और पवित्रता की धारणा को दुर्बल बना देता है। इस आधार पर तथा उन कानूनी गुत्थियों के कारण, जिनकी ओर ध्यान खींचा जा चुका है यानी शादी, गमी तथा इन नाबालिगों के विरासत के अधिकार आदि की कठिनाइयों का ख्याल रखते हुए, मैं श्री मुंशी के वर्तमान संशोधन का विरोध करता हूं। विवाह का सवाल ही ले लीजिए। शादी 18 साल के पहले भी हो सकती है। श्री मुंशी ने सावधानी के साथ स्पष्ट कर दिया है कि उनका संशोधन नाबालिग बच्चों का मां-बाप के साथ जाने से नहीं रोकता। पर जब उनकी शादी होगी तो किस कानून के अनुसार, किस धर्म की रस्म के अनुसार इनका विवाह सम्पन्न होगा? अगर वे अपने विवेक के अनुसार चलें और जिस धर्म—हिन्दू, इस्लाम और ईसाई—को उन्होंने ग्रहण किया है उसके अनुसार शादी कर लें तो सवाल यह आता है कि क्या वह विवाह जायज होगा। यह सब कानूनी और न्याय-सम्बन्धी कठिनाइयां तथा और भी बातें आयेंगी जिनके बारे में मैंने पहले इशारा किया है और जिसके कारण सभा भवन में कुछ गर्मी आ गई है। मैं श्री एन्थॉनी के प्रस्ताव (संशोधन) का समर्थन करते हुए अपने पूर्ववक्ता के सुझाव का अनुमोदन करता हूं और सभा से प्रार्थना करता हूं कि सारा खंड एडवाइजरी कमेटी को वापस भेज दिया जाये जिससे उसकी शब्दावली सावधानी से तौलकर ठीक कर दी जाये। जिस तरह हमने तीन-चार अन्य विवाद-ग्रस्त विषय इस सभा में वापस लाने का निश्चय कर चुके हैं उसी तरह यह भी वापस मंगाया जा सकता है। यही मेरा सुझाव है और मेरा अनुरोध है.....।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बम्बई : जनरल): आप इसे उस कमेटी के हवाले कर सकते हैं जो अध्यक्ष जी ने बनाई है।

***श्री रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा:** मैं इसे स्वीकार करता हूं। मैं इस पर अधिक शान्त ढंग से बहस करना चाहता हूं। मेरा सुझाव है कि इसे उस कमेटी के पास भेज दिया जाये जिसे सभापति जी ने नियुक्त किया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं इसे कमेटी के पास वापस नहीं भेजने देना चाहता।

***अध्यक्ष:** मेरे पास उन सदस्यों की सूची है जो इस विषय पर बोलना चाहते हैं, मैं समझता हूं कि जिस क्रम से मुझसे अनुरोध किये गये हैं उन्हें मैं ठीक तौर से देख सका हूं। इसलिए मैं पहले श्री अलगूराय शास्त्री को पुकारता हूं।

श्री अलगूराय शास्त्री: अध्यक्ष महोदय, मैं उस संशोधन का समर्थन करने के लिये आया हूं जो श्री मुंशी ने उपस्थित किया है। ऐसा करने में मैं समझता हूं कि हम उन नाबालिग बच्चों के साथ न्याय करेंगे जो आजकल अपने माता-पिताओं के प्रलोभन के कारण धर्म-परिवर्तन करने पर विवश हो जाते हैं। लोग आजकल इस तरह का व्यवहार करते हैं कि जमीन के साथ दरख्त भी चले जाते हैं। अगर कोई आदमी अपनी जमीन बेच दे तो उस जमीन में खड़े हुए पेड़ भी बिक जाते हैं। (Trees go with land) यह जो न्याय है वह इस न्याय की तरह से वह नाबालिग बच्चे, जो जानते ही नहीं कि धर्म किसे कहते हैं, Coercion क्या चीज है, धार्मिक व्यवहार क्या कहलाता है, वह मजबूर हो जाते हैं कि अपने माता-पिताओं के धर्म परिवर्तन के साथ उनका धर्म भी परिवर्तित हो जाये। इस कुप्रथा का बहुत बड़ा असर हमारी सारी आबादी पर है। हमको यह चाहिये कि जो हम फंडामेंटल राइट्स का विधान करने जा रहे हैं, उसको लिखने जा रहे हैं और बनाने जा रहे हैं तो हम उन बच्चों के हकों की भी रक्षा करें और उनको धर्म-परिवर्तन करने से रोका जाये। बदलती हुई परिस्थिति से जैसी पहले कभी नहीं थी उससे ज्यादा यह आवश्यक हो गया है कि इस तरह का प्रोविजन हम इस विधान में बनायें कि इस तरह की बातें न हो सकें। वे बच्चे जब बड़े हों तो उनको इस बात का पछतावा होता है कि उनका धर्म-परिवर्तन गलत तरीके से हुआ है।

यूरोप के रहने वाले, यूरोप की गोरी जातियां जो सारी दुनिया पर हुकूमत करती हैं जहां कहीं गईं वह धर्म-प्रवर्तक बनकर गईं। डिगबी की 'Prosperous British India' पढ़ने से ज्ञात होता है कि Cross was followed by sword आगे-आगे धार्मिक मिशनरी गया और उसके पीछे डंडा, तलवार और बंदूक। और उस तरह से वह लोग कोहरसन करते थे। जबर्दस्ती दबाव डालकर धर्म फैलाते थे और साम्राज्य को विस्तार करते थे। साथ-ही-साथ वह आर्थिक और राजनैतिक दबाव भी उन पर डालते थे और अपनी हुकूमत की जड़ गहराई तक पहुंचाते थे।

[श्री अलगूराय शास्त्री]

फंडामेंटल राइट्स में यह संशोधन चाहते हैं कि धर्म को बदल कर सचमुच अगर कोई अच्छा धर्म नजर आता है यानी अगर मैं समझता हूं कि सिक्खिज्म हिन्दूइज्म से अच्छा है तो मुझको समझ-बूझकर और दानिसमंदाना तरीके से धर्म-परिवर्तन करने का अधिकार होना चाहिये, और अधिकार है। लेकिन प्रलोभन में आकर नहीं। जब एक परिवार के थोड़े से आदमी दूसरे मजहब के आदमियों पर बंदूक, तलवार से हमला करते हैं, तो अपनी जान बचाने के लिए विवश होकर वे अपना धर्म परिवर्तन कर लेते हैं। तो यह धर्म-परिवर्तन नहीं माना जाना चाहिये क्योंकि यह नाजायज और अनुचित दबाव के कारण हुआ है। इसी प्रकार इन हालतों को देखते हुए जिनमें सिर्फ प्रलोभन से धर्म-परिवर्तन किया जाता है, सच्चे अर्थों में धर्म-परिवर्तन नहीं है। मेरा इसमें जाती और 24 वर्ष का तजुर्बा है कि किस तरीके से माता-पिताओं को प्रलोभन देकर धर्म-परिवर्तन करने के लिये रजामन्द किया जाता है और उनके साथ-ही-साथ बच्चे भी चले जाते हैं। ऐसा लगता है कि एक आदमी जमीन को अपने हाथ में उठा कर ले जाता है और असहाय पेड़ उसके साथ चले जा रहे हैं।

एक इलाका Excluded Area करके सुरक्षित कर दिया गया है, खास लोगों के काम करने के लिए जरायम पेशा वालों का इलाका बना दिया गया है। इसी किस्म के दूसरे रकबे मुकर्रर कर दिये गये हैं; कुछ ईसाई धर्मोपदेशकों के लिए। छत्तीसगढ़ के इलाके में और दूसरे ऐसे ही जंगली इलाकों में जहां ऐसी जातियां हैं जो पुराने धर्म को मानती हैं वहां हिंदू धर्मोपदेशक यह भी नहीं कर सकते कि अपना प्रचार कर सकें; 'पृथक् क्षेत्रों या अंशतः पृथक् क्षेत्रों का इलाका', जहां काम नहीं किया जा सकता। सरकार की यह दूषित नीति थी। हमको उससे नजात मिलनी चाहिए। ड्यूनट ने अपनी Census of India 1930 नामी मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में लिखा है कि आसाम में तीन सौ प्रतिशत ईसाई जनसंख्या Christian population बढ़ी और वह इसलिये कि हिंदू समाज में कुछ खराबियां थीं। उसी की वजह से धर्म-परिवर्तन कराने वाले लोग गड़बड़ी करते हैं और इन लोगों को मौका मिलता है कि धर्म-परिवर्तन करें। सुमैया कामत ने अपनी पुस्तक The Census of India 1911 की मर्दुमशुमारी में लिखा है कि एक धर्म के लोग दूसरों को मिटाने जा रहे हैं। उनमें जो खराबियां हैं, उनसे नाजायज फायदा उठाते हैं और हर तरह से प्रलोभन देकर, कुछ बड़े आदमियों को समझा-बुझाकर धर्म-परिवर्तन कर लेते हैं। यह जो सब काम हुए है, उन्हीं के कारण आज कटुता दिखलाई पड़ती है। ईसाइयों ने हिन्दुस्तान की पिछड़ी हुई जातियों की सेवा का जो काम किया है, उन्हें मैंने पढ़ा है। मैंने पिछड़ी हुई जातियों में उनका काम देखा है और श्रद्धा से मेरा सिर झुक जाता है कि किस तरह से उन्होंने काम किया। अगर वह सेवा के भाव से काम करते तो क्या ही अच्छा होता। लेकिन यदि Scavanger, भंगी, चर्मकार आदि इन पिछड़ी हुई जातियों का कोई झगड़ा किसी जमींदार या बड़े आदमी के साथ हो जाता है तो उस झगड़े में सुलह कराने के बजाय मैंने देखा है कि जमींदार के साथ उस झगड़े का नाजायज फायदा उठाया जाता है। उनके दिलों में रोग था

हमने उसको और बढ़ा दिया। बुरी नीति से काम लेकर धर्म-परिवर्तन कराने वाले लोग इन झगड़ों को बढ़ाते हैं, दबाते नहीं, समझते नहीं। इसी प्रकार दूसरे धर्म के लोग हमारे झगड़े प्रोत्साहित करते हैं क्योंकि उन्हें अपनी आबादी और जनसंख्या बढ़ानी है और उसका नतीजा यह होता है कि गरीब चमार, भंगी और दूसरे दबे हुए लोगों में से मां बाप को धर्मान्तरित किया जाता है। उनके साथ उनके बच्चे भी धर्मान्तरित हो जाते हैं हम देखते हैं कि जमींदारों और ऊंची जाति के लोगों के साथ गरीब तथा पिछड़ी हुई जाति के लोगों के झगड़ों में धर्म-परिवर्तन कराने वाला कभी भी सुलह कराने की नीति से काम नहीं लेता ''क्यों आपस में लड़ते हो?'' वह उनसे कभी भी यह नहीं पूछता। संस्कृत में श्लोक है:

''मा भ्राता भ्रातरम द्विक्षन्
मा स्वसारं सुतस्वता
सम्यश्र: सर्वतो भूत्वा
वाचा वदत् भद्रया।''

चाहिए तो यह कि लोग अगर आपस मे लड़ते हों तो हम उनसे प्रेम से बातें करें कि तुम भाई-भाई हो, बहिन-बहिन हो, आपस में क्यों लड़ते हो, इस प्रकार उन्हें समझावें। पैगम्बरों ने, फरिश्तों ने, नेताओं ने, और रहनुमाओं ने यह बात कही है मगर आज यह नहीं होता है, आज हम मौका देखते हैं कि गुंजाइश हो तो चोर दरवाजे से घुसने के लिए तो हम जाते हैं और कहते हैं कि तुम कहां किस चक्कर में हो, तुम्हारी उन्नति का रास्ता यह नहीं हैं। हर आदमी उसमें देख सकता है कि किस प्रकार से नाजायज फायदा उठाकर बहुसंख्या के लोगों को पागल करने की नीति अख्तियार की गई है। विदेशी हुकूमत (Foreign Bureaucracy) यहां काम करती रही है और इस तरह के स्वार्थी वर्ग कायम करती रही है, जिससे वह मजबूती के साथ यहां हुकूमत कायम रख सके। आज यदि हम इस बुनियाद को खत्म नहीं करते तो हम मौलिक अधिकार किसको देने जा रहे हैं? इन नाबालिग बच्चों को, जो गोद में बैठे हुए हैं, यदि उन्हें जमीन के ऊपर के दरख्त की तरह से कटते जाने देंगे तो हम अन्याय करेंगे। हम जानते हैं कि दबाव से धर्म-परिवर्तन को हम न रोक सकेंगे तो यह अन्याय होगा। मुझे अखत्यार है कि मैं धर्म परिवर्तन करूं। मैं ईश्वर पर विश्वास रखता हूं। कल मुझे मालूम हो कि ईश्वर एक मजाक है, इन्सानी दिमाग का एक फितूर है तो मैं नास्तिकवाद में जा सकता हूं। मैं जानता हूं कि हिन्दू धार्मिक विश्वास झूठे हैं तो मेरे पके हुए बाल, टूटे हुए दांत, यह उम्र और सोचने की ताकत सब ने मुझे मजबूर किया है कि मैं धर्म बदलूं। लेकिन मेरा नाबालिग बच्चा मेरी सुनाई हुई बातों को दुहराने लगे तो क्या उसको भी यह हक आप दे देंगे?

पूज्य टंडन जी ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा कि 100 रुपये की जायदाद एक नाबालिग लिख दे तो वह नाजायज है मगर एक नाबालिग बच्चा मां-बाप के साथ अपने धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म में चला जाये तो यह नाजायज नहीं?

[श्री अलगूराय शास्त्री]

कितनी बुरी बात है, और भोले-भाले बालकों पर बुरा असर डालती है। इसी प्रकार आबादी पर असर डालने की नीति से आपस का तास्सुब बढ़ता गया है, और विदेशी हुकूमत यहां पर आबादी घटा-बढ़ा कर उसके द्वारा हुकूमत कर सकी। इसीलिए विभिन्न जातियों की आबादी के अनुपात को बदला गया है। जान-बूझकर यह तमाम बातें मैं करता हूं, लेकिन मेरा कोई आक्षेप किसी पर नहीं है यह तो मर्दुमशुमारी या जनगणना का मायाजाल है। इस मायाजाल को लेकर हुकूमत के दिमाग पर एक चीज काम करती है। यह चाहती है कि इस तरह का अनुपात आबादी में से हर तरह का तनस्सुव हो ताकि ऐसे तनस्सुव आधार पर वह झगड़े पैदा करें और झगड़े पैदा करके आबादी या जनसंख्या के एक भाग को दसूरे भाग से लड़ाती रहे और इस लड़ाई के आधार पर अपना राज मजबूत करती रहे। इन सभी दूषित नीतियों को दूर करने के लिए श्री मुंशी का यह संशोधन है और इससे ज्यादा अच्छी बात नहीं हो सकती; इसलिए मैं इसकी ताईद करता हूं।

हम समझते हैं कि बहुमत का फर्ज होना चाहिए कि वह अल्पमत को दबावे नहीं। हम सब का आदर और मान करते हैं और पूरा मौका देते हैं कि अपने धर्म का आप प्रचार कीजिए और जो आदमी आपके ख्याल के हो जावें उन्हें अपने धर्म में खुशी से लीजिये, उन्हें आप अपने अन्दर लीजिये। लेकिन उन्हीं को लीजिये जिनका हजम करना मुनासिब हो, नामुनासिब तरीके से उन्हें अपने में हजम करके आप ठीक नहीं करेंगे। जो नाबालिग हैं आपने उन्हें गोद में लिया वह कुछ जानते नहीं हैं। उन्हें आप एक थोड़ा कपड़ा और एक रोटी के लिए और एक नन्हें-से खिलौने के लिए ललचा कर उनकी सारी जिन्दगी को पामाल कर रहे हैं और बाद में उन्हें पछताना पड़ता है कि उन्हें मौका नहीं मिला कि वे अपने को अपनी इच्छा के धर्म में रखते। हम रवादारी बरतने को तैयार हैं। मैं खुद धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हूं, मगर कोई आरगूमेंट करके विचारे तो मेरा मत बदले, लेकिन मैं अपने नाबालिग बच्चों को लेकर धर्म परिवर्तन करूं यह अधिकार मुझे नहीं होना चाहिए, कम-से-कम एक खास उम्र तक के बच्चों के लिए नाबालिग बच्चे कौन हैं, इस सम्बन्ध में लिखा है कि वे बच्चे जो 12 साल के नीचे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अंडरटीन में 19 वर्ष तक के लोग शामिल हैं।

***श्री अलगूराय शास्त्रीः** बहरहाल 19 हो जाये तो और ठीक है, लेकिन यह न हो तो कम-से-कम एक साल की छूट देकर तो नाबालिग की उम्र ठहराइये जो बालिग और नाबालिग की आयु की हद मुकर्रर है और वह मजहबी मामलों में क्यों नहीं रखी जाती? लोग कहते हैं कि क्या प्रोत्साहन या प्रलोभन होगा, लोगों को धर्म बदलने में जबकि उनके बच्चे छूट जावेंगे। मैंने सुना है कि जापान के घरों में एक आदमी एक Religion का पालन करता है और उसका लड़का दूसरे धर्म को मानता है। मजहब के माने क्या है? मां क्या अपने बच्चे को दूध पिलाती है इसलिए कि उसका मजहब बदल जाये। अगर मां का प्रेम सच्चा है तो वह

अपने बच्चे को दूध पिलायेगी। दूध के साथ क्या मजहब भी बदल दिया जाये? हम मां की गोद से बच्चे को छीनना नहीं चाहते लेकिन यह हक बच्चे को देना चाहते हैं कि मर्दुमशुमारी की किताबों में और सरकारी कागजों में वह अपने मजहब को Record करा सकें। तब तक वह बालिग हो जायेगा और तब जब वह स्वयं घोषित करेगा कि हम इस मजहब को मानते हैं, हम इसे संशोधन से इतना हक देते हैं कि मां-बाप के साथ की जरूरत उनके बच्चों को है। उन्होंने समझदारी से मजहब बदला है तो अपने बच्चों को पढ़ायें-लिखायें, परन्तु उन बच्चों का मजहब तब माना जाये जब वह बालिग होकर यह एलान करें कि हमारा मजहब क्या होना चाहिए क्या नहीं। यह इस संशोधन की मंशा है और मैं इसकी ताईद करता हूं और पुरजोर मुखालिफत करता हूं।

***श्री जगतनारायण लाल** (बिहार : जनरल): सभापति जी, मैंने यह आशा की थी कि खण्ड 13 के स्वीकार हो जाने पर किसी भी माइनोरिटी को इस हाउस में उज्रदारी या आबजेक्शन करने का मौका नहीं रहेगा। खण्ड 13 कहता है कि:

> ''All persons are equally entitled to freedom of conscience and the right freely to profess, practice and propagate religion, subject to public order, morality or health and to the other provisions of this Chapter.''

यह 'फरदेस्ट लिमिट' तक गया है। संसार के 'माडर्न वर्ल्ड' के अच्छे-से-अच्छे जो कांस्टीट्यूशन्स हैं, उन कांस्टीट्यूशन्स को अगर उठाकर देखें तो आपको पता चलेगा कि कहीं भी यह प्रोपेगेट करने का राइट मंजूर नहीं किया गया है। अगर Swiss Confederation के Article नम्बर 50 को आप देखें तो आप पायेंगे, ''the free exercise of religion is guaranteed within limits compatible with public order and morality''।

> (सार्वजनिक शांति और मौलिकता के आधीन प्रत्येक नागरिक को अन्त:करण की स्वतंत्रता होगी और किसी धर्म का अनुयायी होने, और उसका आचरण करने का अधिकार होगा।)

वहीं वह खत्म हो जाता है अगर Irish Free State के article 44 Sub-Clause (2) I को आप देखें तो वहां दिया गया है Freedom of conscience and the free profession and practice of religion are, subject to public order and morality, guaranteed to every citizen. (सार्वजनिक शांति और नैतिकता की समुचित सीमा के अन्दर धर्माचरण सम्बन्धी स्वतंत्रता का प्रत्येक नागरिक को अधिकार होगा) Union of the Soviet Socialist Republics का जो Constitution है, उसके अगर आर्टीकिल 124 को आप देखेंगें तो पता चलेगा कि ''In order to ensure to citizens freedom of conscience the church in the U.S.S.R. is separated from the

[श्री जगतनारायण लाल]

State, and the school from the church Freedom of religions worship and freedom of anti-religions propaganda is recognised for all citizens''.

(इस वास्ते कि नागरिकों को अन्त:करण की स्वतंत्रता का अधिकार हो, यूनियन ऑफ सोवियट सोशलिस्ट के सारे चर्च राज्य से तथा सारे स्कूल चर्च से पृथक् किये जाते हैं। धार्मिक उपासना की तथा धर्म विरोधी प्रचार की स्वतंत्रता सभी नागरिकों को स्वीकार की जाती है)। अगर मैं वर्ल्ड के भिन्न-भिन्न विधानों के क्लाज जहां तक freedom of professing religion का सवाल है आपके सामने पेश करूं तो बहुत तूल हो जायेगा। मैं यह नहीं चाहता कि आपका और अधिक समय इस सम्बन्ध में बरबाद करूं। मेरा कहना यह है कि वह हाउस माइनोरिटीज के लिये जिस Tarthest limit तक जा सकता था वह गया है। यह जानते हुए कि इस मुल्क में चन्द माइनोरिटीज ऐसी हैं जिसका प्रचार सम्बन्धी अधिकार इस लिमिट तक पहुंच जाता है जिससे बहुत दिक्कतें पैदा होती हैं। मैं उन डिटेल्स में नहीं जाना चाहता। मेरे पहले जो साहब बोल गये हैं उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं भी हैं। मेरा कहना यह है कि इतना ही काफी होना चाहिए। जब श्रद्धेय टंडन जी ने यह कहा कि इस हाउस के बहुत से कांग्रेस मैन के विचारों को समझते हुए कहते हैं कि प्रचार सम्बन्धी अधिकार हम रखना नहीं चाहते थे तो उन्होंने सचमुच हममें से बहुतों के विचार को सामने रखा था। वास्तविक बात यह है कि अगर माइनोरिटीज को यह बात महसूस कराने का ख्याल हमें न होता कि वे जो राइट्स अभी तक बरतते आ रहे हैं और जहां तक हो उचित सीमा तक उनका आनन्दोपभोग करना चाहते हैं उसे हम कम करना नहीं चाहते तो हम यहां Right to propagate नहीं रखते। मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि जो माइनोरिटीज की ओर से जोर देते हैं, उनको यहीं तक सन्तुष्ट रहना चाहिए और इससे ज्यादा के लिए जोर देना जरूरत से ज्यादा होगा और वह मेजोरिटी की उदारता का नाजायज फायदा उठाना होगा और यह बहुत अफसोसनाक बात होगी और हमारे लिए उस हद तक जाना मुश्किल और नामुमकिन है। मैं समझता हूं कि मिस्टर मुंशी ने जो संशोधन हाउस के सामने रखा है, वह धर्म-प्रचार का अधिकार दे देने के बाद बहुत जरूरी है। इसलिये सभा को उसे जरूर मंजूर करना चाहिये। बहुत से आरगूमेंट्स हाउस के सामने अभी तक पेश किये जा चुके हैं इसलिये मैं उन आरगूमेंट्स पर फिर कुछ कहना नहीं चाहता। मैं सिर्फ इतने शब्दों के साथ मुंशी साहब के शब्दों का समर्थन करता हूं।

***डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष जी, मुझे यह कहने में खेद हो रहा है कि श्री मुन्शी ने नाबालिग बच्चों के धर्मान्तरकरण के बारे में जो संशोधन रखा है, मैं उससे सहमत नहीं हूं। यह खंड 17 सम्भवत: इस सभा पर यह असर डालता है कि उस प्रश्न पर फंडामेंटल राइट्स कमेटी (बुनियादी अधिकार-समिति),

माइनोरिटी सब-कमेटी (अल्पसंख्यक उपसमिति) या एडवाइजरी कमेटी (परामर्श-समिति) ने विचार नहीं किया है। मैं सभा को विश्वास दिला देना चाहता हूं कि इस विषय पर बड़ी गम्भीरता के साथ और बहुत कुछ विचार किया गया था और इस सवाल के सभी पहलुओं पर ध्यान डाला गया था। सारे सवाल के सभी रूपों पर विचार करने के बाद और जो कठिनाइयां हमारे सामने पेश आईं थी उनको देखते हुए, एडवाइजरी कमेटी इस निर्णय पर पहुंची थी कि उन्हें इस खंड के उस वर्तमान स्वरूप पर ही दृढ़ रहना चाहिए जो श्री वल्लभभाई पटेल ने रिपोर्ट में भेजा है।

महाशय, मेरे मस्तिष्क में कठिनाई ऐसी स्पष्ट है कि मैं श्री मुन्शी से संशोधन वापस ले लेने का अनुरोध करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं देखता।

महोदय, बच्चों के बारे में तीन कल्पनाएं की जा सकती हैं। पहली तो उन बच्चों की, जिनके मां-बाप और अभिभावक हैं। कुछ अनाथ बच्चों की कल्पना दूसरी है और कानूनी अर्थ में जिनके कोई मां-बाप और अभिभावक नहीं हैं। मान लीजिए 18 वर्ष तक के बच्चों का धर्मान्तर न करने का यह खंड आपने पास कर लिया, पर उन बच्चों का क्या होगा जो अनाथ हैं? क्या उनका कोई धर्म नहीं होगा? क्या उन्हें धार्मिक शिक्षा ऐसे व्यक्तियों द्वारा नहीं दी जा सकेगी जो उन अनाथों पर दया दिखाने में दिलचस्पी रखते हैं? मुझे ऐसा मालूम होता है कि अगर श्री मुन्शी द्वारा संशोधित यह खंड स्वीकार किया जाता है कि अठारह वर्ष से कम अवस्था के बच्चों का धर्मान्तर नहीं किया जा सकता, तो उसका परिणाम यह होता है कि जो बच्चे अनाथ होंगे, उनके कानूनी अभिभावक नहीं होंगे, उन्हें कोई धार्मिक शिक्षा न दी जा सकेगी। मुझे निश्चय है कि यह ऐसा परिणाम है जिसकी कल्पना करके सभी खुश होंगे। इसलिए मैं श्री मुन्शी के द्वारा प्रस्तावित संशोधित के प्रभाव-क्षेत्र से ऐसे इस श्रेणी के बालकों को अलग रखना होगा।

अब मैं अन्य खण्डों की ओर आता हूं, अर्थात् उन बच्चों के बारे में जिनके माता-पिता और अभिभावक हैं। यहां भी ऐसा मालूम होता है कि स्पष्टता के लिए इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ऐसे बच्चे मां-बाप और अभिभावक की जानकारी में धर्मान्तरित किये जाते हैं। दूसरा है उन बच्चों के बारे में जो धर्मान्तरित किये हुए मां-बापों के हैं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि नाबालिगों के कानूनी अभिभावकों के साथ रहने वाले धर्मान्तरित किये जाने पर निषेधाज्ञा लगनी चाहिए, पर उस अवस्था में जब वह धर्मान्तर बिना अभिभावकों की राय और जानकारी के किया गया हो। मेरे ख्याल में उस प्रकार का प्रस्ताव बिल्कुल वैध है। जो धर्म-प्रचारक नाबालिग को धर्मान्तरित करना चाहता है, जो ऐसे मां-बाप की या किसी भी कानूनी अभिभावकता में हैं जो अभिभावकता के अुनसार बच्चे के धार्मिक विश्वास पर नियंत्रण रखने का अधिकारी है, ऐसे अभिभावक या माता-पिता को सूचना देने से भी वंचित

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

नहीं करेगा और उसे यह भी न जतायेगा कि वह बच्चा धर्मान्तरित किया जा रहा है। यह ऐसी सीधी बात है जिस पर आपत्ति नहीं की जा सकती।

पर अगर हम दूसरे मामले पर विचार करें अर्थात् मां-बाप के धर्मान्तरित किये जाने पर उनके बच्चों की ही धार्मिक स्थिति पर विचार करते हैं तब हमें बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अगर हम यह कहते हैं कि बालिग होने के कारण जो मां-बाप दूसरे धर्म में दीक्षित कर लिये जाते हैं और नाबालिगी 18 साल से कम होने के कारण उनके बच्चे अपने बाप के साथ दूसरे धर्म में नहीं लिये जा सकते, तो यहां प्रश्न यह उठता है कि जिनके मां-बाप धर्मान्तरित हो जायेंगे उनके नाबालिग बच्चों के लिए हम क्या व्यवस्था करने जा रहे हैं? मान लीजिए कोई मां-बाप ईसाई हो गये और उनके कुछ बच्चे हैं। एक बच्चा मर जाता है। मां-बाप तो ईसाई धर्म में दीक्षित होने के कारण उस धर्म के अनुसार ही उसकी अन्त्येष्ठि शव गाड़कर कर देते हैं। क्या मां-बापों का यह कार्य जुर्म समझा जायेगा? मान लीजिए किसी धर्मान्तर ग्रहण करने वाले के एक बच्चा—लड़की है। वह उसका विवाद ईसाई धर्म के रीति-रिवाज के अनुसार कर देता है। उस विवाह का परिणाम क्या होगा? यह शादी कानूनी होगी या गैर कानूनी?

अगर आप यह चाहते हैं कि बच्चों को धर्मान्तरित नहीं किया जाना चाहिए, तो आपको अभिभावुकता के लिए कोई और कानून बनाना होगा जिससे धर्मान्तरित हुए मां-बाप अपना धार्मिक प्रभाव ऐसे बच्चों पर न डाल सकें। महोदय, मैं सभा से पूछ सकता हूं कि क्या यह मंजूर करना इसके लिए यह सम्भव है कि एक पांच वर्ष का बच्चा केवल इसलिए अपने मां-बाप से अलग किया जा सकता है कि उसके मां-बाप ईसाई धर्म ग्रहण कर चुके हैं, जो वास्तव में उनका पहला धर्म नहीं है? मैं इन बातों का हवाला इसलिए देता हूं कि ये कठिनाइयां फंडामेन्टल राइट्स कमेटी (बुनियादी अधिकार समिति) के सामने आई थीं और माइनोरिटीज कमेटी (नाबालिग समिति) और एडवाइजरी कमेटी (परामर्श-समिति) के सामने भी, और हम इस परिणाम पर पहुंचे थे कि अठारह साल से कम अवस्था के बच्चों का धर्मान्तरकरण रोकने पर कितनी ही बुराइयां पैदा हो जायेंगी और वे तितर-बितर हो जायेंगे। इसीलिए हम इस सारे विधान को ही निकाल देना चाहते थे। *(हर्ष-ध्वनि)* हमने फंडामेंटल राइट्स (बुनियादी अधिकारों) के 17वें खंड में जो हवाला मात्र दे दिया है वह मेरे ख्याल से कानून के अमल में आ जाने पर इसे व्यवस्थित करने में कोई रुकावट नहीं डालता। इसलिए मेरा निवेदन है कि यह खंड कमेटी के पास फिर विचार करने के लिए भेज देने पर कोई सन्धिजनक परिणाम नहीं उत्पन्न होगा। मुझे इस बात पर कोई आपत्ति नहीं है कि जो लोग इस पर भिन्न मत रखते हैं वे इस पर और विचार करें, पर मैं यह कहना चाहूंगा कि तीनों ही कमेटियां इस विषय पर अपना पूरा ध्यान दे चुकी हैं। मैं तो इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि सभी परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह खंड बिल्कुल निकाल

देना ही सर्वोत्तम होगा। मैं ऐसा विधान बनाने का विरोधी नहीं हूं कि जिन बच्चों के विधि-विहित अभिभावक हैं उन्हें बिना उनके सूचना दिए या जानकारी प्राप्त कराये धर्मान्तरित न किया जाये। इतना ही इस सम्बन्ध में काफी होगा।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल:** अध्यक्ष महोदय, यह मामला कठिनाइयों से मुक्त नहीं है। इस विवाद में उत्तेजना बढ़ाने की जरूरत नहीं है। यह बात देशभर में महशूर है कि धर्मान्तरकरण सामूहिक रूप में किया जाता है। यही नहीं, जबर्दस्ती, दबाव डालकर, दबाव और अनुचित प्रभाव द्वारा धर्मान्तर किये जाते हैं और हम इस सच्चाई को छिपा नहीं सकते कि बच्चे भी धर्मान्तरित किये जाते हैं, मां-बाप के साथ भी और अनाथ होने की अवस्था में भी। अब हमें सभी कारणों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है और न उन सभी शक्तियों पर जिनके कारण यह धर्मान्तरित किये गए हैं; पर अगर तथ्य स्वीकार किया जायें, तो हमें इस देश में रहना है और राष्ट्र-निर्माण का रास्ता निकालना है। हमें अपनी समस्या का समाधान ढूंढने के लिए वाद-विवाद में गर्मी लाने की जरूरत नहीं है। वर्तमान परिस्थिति में क्या करना सर्वोत्तम है, इस पर दृष्टिकोण का अन्तर हो सकता है—विभिन्न सम्प्रदायों में मतभेद होना अवश्यम्भावी है और जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने कहा है इस प्रश्न पर तीन कमेटियों में विचार हो चुका है और फिर भी उसका कोई ऐसा उपाय नहीं निकल सका जो सर्व सम्मत कहा जा सके। हमें एक और प्रयत्न करना चाहिए और इस विवाद को जारी नहीं रखना चाहिए। इससे सबको संतुष्ट नहीं किया जा सकता। इसलिए इसे एडवाइजरी कमेटी के हवाले कर देना चाहिए। हम इसे एक और मौका देंगे।

***अध्यक्ष:** क्या मैं यह समझूं कि सभा इस खंड को आगे विचार करने के लिए एडवाइजरी कमेटी के सुपुर्द करने की इच्छा रखती है?

(खंड एडवाइजरी कमेटी को वापस सौंपा गया।)

खण्ड 18—सांस्कृतिक शिक्षा-सम्बन्धी अधिकार

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल:** अब मैं खंड 18 पेश करता हूं—

"(1) हर इकाई के अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति की दृष्टि से रक्षा की जायेगी और ऐसे कानून या व्यवस्था का निर्माण नहीं किया जायेगा जिनसे इन बातों पर विरोधी असर या दबाव पड़े।

(2) कोई भी अल्पसंख्यक, चाहे वह धार्मिकता के आधार पर हो, या सम्प्रदाय अथवा भाषा की दृष्टि से, राष्ट्र की शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश पाने से वंचित नहीं रहेगा। न उन पर कोई धार्मिक-शिक्षा अनिवार्य रूप में लागू की जायेगी।

(3) (क) सभी अल्पसंख्यक, चाहे उनका आधार धर्म, सम्प्रदाय हो या भाषा, किसी भी इकाई में अपनी पसन्द की शिक्षा-संस्था स्थापित करने को स्वतंत्र होंगे।

[माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल]

(ख) राज्य, शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देते समय, अल्पसंख्यकों की—धर्म, सम्प्रदाय या भाषा पर आधारभूत-शिक्षा-संस्थाओं के प्रति भेदभाव नहीं रखेगा।''

मैं यह प्रस्ताव सभा की स्वीकृति के लिए पेश करता हूं।

***श्री मोहनलाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): महोदय, आपकी आज्ञा से मैं यह प्रस्ताव करना चाहूंगा कि यह प्रस्ताव भी एडवाइजरी कमेटी को वापस सुपुर्द कर दिया जाये जिससे इस पर पुनर्विचार कर लिया जाये और कुल मिलाकर मैं समझता हूं कि यह कहीं अच्छा होगा यदि यह सारा खंड एडवाइजरी कमेटी (परामर्श समिति) के पास पुनर्विचार के लिए भेज दिया जाये।

***अध्यक्ष:** श्री मोहनलाल सक्सेना का प्रस्ताव है कि इस खंड को भी एडवाइजरी कमेटी के पास पुनर्विचारार्थ वापस भेज दिया जाये।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त:** अध्यक्ष महोदय, खंड 18 के उपखंड (1) में कहा गया है—

> ''हर इकाई के अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति की दृष्टि से रक्षा की जायेगी और ऐसे कानून या व्यवस्था का निर्माण नहीं किया जायेगा जिससे उसकी इन बातों पर विरोधी असर या दबाव पड़े।''

मैं अपनी बात की व्याख्या करना चाहता हूं। अगर किसी खास इकाई में..

***अध्यक्ष:** आप तो खंड के गुणों का विवेचन करने जा रहे हैं।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त:** मैं गुणों का विवेचन करने नहीं जा रहा हूं। मैं तो स्पष्टीकरण चाहता हूं।

***श्री के.एम. मुंशी:** मुझे इसमें एक संशोधन पेश करना है।

***अध्यक्ष:** एक प्रस्ताव श्री मोहनलाल सक्सेना का है। वह चाहते हैं कि खंड कमेटी के पास वापस सुपुर्द कर दिया जाये, अगर वह स्वीकार कर लिया जाता है तो संशोधन पेश करने की जरूरत नहीं रहती।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त:** मैं नहीं जानता कि खंड कमेटी के पास वापस भेज देने पर भी मेरा स्पष्टीकरण पूरा होगा या नहीं। अगर आप मुझे बोलने की आज्ञा दें....।

***अध्यक्ष:** अगर सभा उस खंड को कमेटी के हवाले किये देती है तो इस पर वाद-विवाद से कोई विशेष लाभ न होगा।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त:** यदि सभा यह निश्चय करती है कि यह संशोधन वापस कमेटी के हवाले कर दिया जायेगा, तो मुझे बोलने की आवश्यकता नहीं है। मैं कोई संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं।

***श्री के.एम. मुंशी:** यदि श्री मोहनलाल सक्सेना का सुझाव स्वीकार कर लिया

जाता है तो क्या संशोधन पेश करने की जरूरत रह जाती है? यदि वह स्वीकार किया जाता है तो कोई संशोधन पेश करने की आवश्यकता नहीं है।

***आचार्य जे.बी. कृपलानी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यदि बहस के बाद हम देखें कि इसमें गम्भीर कठिनाइयां हैं तो खंड को एडवाइजरी कमेटी के पास वापस भेजा जा सकता है। यदि गम्भीर कठिनाइयां नहीं हैं और सभा क्रियात्मक रूप में एकमत है तो हम इस पर आगे विचार कर सकते हैं।

***माननीय सदस्य:** यह ठीक है।

***अध्यक्ष:** तो मैं समझता हूं कि सभा इस खंड पर बहस करना चाहती है। संशोधन पेश किये जायेंगे। श्री मोहनलाल सक्सेना का सुझाव हम बाद में ले सकते हैं।

***श्री के.एम. मुंशी:** मेरा प्रस्ताव है कि खंड 18 का उप-खंड (2) एडवाइजरी कमेटी को वापस सुपुर्द कर दिया जाये। बहुत-से सदस्यों का यह सामान्य मत था कि जो बहसें हुई हैं, उनके आधार पर उस पर पुनर्विचार होना चाहिए।

***अध्यक्ष:** और संशोधन की सूचना भी मुझे मिली है। मैं माननीय सदस्यों से कहूंगा कि वे अपने संशोधन पेश करें।

***श्री वी.सी. केशव राव** (मद्रास : जनरल): मैं अपना संशोधन नहीं पेश करूंगा। (अतिरिक्त सूची नं. 2 का नं. 76वां संशोधन)

***डॉ. सुरेशचन्द्र बनर्जी** (बंगाल : जनरल): इस संशोधन को देखते हुए कि उप-खंड (2) एडवाइजरी कमेटी को वापस सुपुर्द कर दिया जाये, मैं अपना संशोधन पेश करने का कोई उद्देश्य नहीं देखता और मैं इसे नहीं पेश करना चाहता।

***श्री के. सन्तानम्:** मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं। (अतिरिक्त सूची 2 का संशोधन नं. 78)

***श्री फूलसिंह:** मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं। (अतिरिक्त सूची नं. 2 का संशोधन नं. 80)

श्री अलगूराय शास्त्री: मैं अपना संशोधन नहीं पेश करना चाहता।

***डॉ. सुरेशचन्द्र बनर्जी:** श्री मुंशी ने जो आश्वासन दिया है, उसे देखते हुए मैं सूची के नं. 82 का संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं।

***माननीय श्री जगजीवन राम:** मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं। (अतिरिक्त सूची नं. 2 का संशोधन नं. 83)

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरा संशोधन अर्थात् नं. 84, एक नया ही खंड है। वह बाद में लिया जा सकता है।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त:** संशोधन सं. 85 नये खंड रखना चाहता है। यह बाद में लिया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** जिन संशोधनों की सूचना मुझे मिली थी, वे समाप्त हो गये, वह पेश नहीं किये गये।

श्री मुंशी का संशोधन और खंड दोनों ही अब बहस के लिए खुल गये हैं। एक सुझाव यह है कि सारा खंड ही वापस सुपुर्द कर दिया जाये और संशोधन यह है कि केवल खंड नं. (2) वापस किया जाये।

***श्री महावीर त्यागी:** महाशय, मैं श्री मोहनलाल सक्सेना के प्रस्ताव का समर्थन करने खड़ा हुआ हूं। उन्होंने सिर्फ प्रस्ताव किया है कि यह खंड वापस एडवाइजरी कमेटी को सौंप दिया जाये। मेरी समझ में इस खंड को हम हल्के रूप में ले रहे हैं। हो सकता है कि इस प्रकार के मामलों में—अर्थात् सांस्कृतिक और शिक्षा-सम्बन्धी मामलों की व्याख्या वहीं तक हो सकती है, जहां तक उनका व्यक्तिगत रूप है और अल्पसंख्यकों का सवाल भावी सरकार के लिए छोड़ देना अच्छा होगा। मेरा ख्याल है कि हम अपनी भावी सरकार का हाथ बहुत अधिक बांध दे रहे हैं। हमें उन्हें इतनी स्वतंत्रता तो दे देनी चाहिये कि वह आने वाले समय और परिस्थिति के अनुसार काम कर सकें।

महाशय, अल्पसंख्यकों को संस्कृति और शिक्षा की सुविधाएं दिये जाने का सवाल ऐसा है, जिस पर मैं यही राय दूंगा कि भविष्य में ऐसे अवसर आ सकते हैं, जब संघ से सम्बद्ध सरकारों को अन्य इकाइयों से बातचीत करके यह जानने की जरूरत पड़ सकती हैं कि उन क्षेत्रों में अल्पसंख्यकों का क्या हो रहा है, जो संघ में सम्मिलित नहीं हुए हैं। पर मान लीजिए कि इन इकाइयों की सरकारें जो संघ सरकार से सम्बद्ध हैं इस खंड 18 के अनुसार अल्पसंख्यकों के प्रति किसी नीति से आबद्ध हैं, तो यहां के लोग यह जानने की जरूरत समझेंगे कि इन अल्पसंख्यकों का क्या हो रहा है जो संघ में शामिल होने से इन्कार कर चुके हैं और पाकिस्तान अथवा भारत के और किसी ऐसे हिस्से में हैं, जिन्होंने अपने को पृथक् रूप में संघटित किया है। मेरी राय है कि अल्पसंख्यकों का सवाल यहां आबद्ध न कर उस समय के लिए छोड़ दिया जाये, जब हम यह बात निश्चयपूर्वक जान सकें कि क्या सारा भारत एक इकाई बनने जा रहा है या दो भागों में विभाजित होने। यदि विभाजन होना है तो हमें यह जरूर जानना चाहिए कि अन्य इकाइयों में अल्पसंख्यकों पर क्या बीत रही है। इसलिए सवाल अभी-अभी सुलझा देना आसान नहीं है। मेरा निवेदन है कि जब मैं यह कहता हूं कि जब तक हम देश का भावी अन्तिम रूप निश्चित रूप में न समझ लें, तब तक इस

सवाल को टाले रखना चाहिए, तो मेरे साथ सारी सभा मेरा समर्थन करेगी और ये इकाइयां अल्पसंख्यकों के साथ कैसा व्यवहार करने जा रही हैं। इसलिए मैं श्री मोहनलाल सक्सेना के इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं कि खंड को टाल दिया जाये।

***श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त:** अध्यक्ष महाशय, खण्ड 18, उपखण्ड (1) कहता है:

''हर इकाई के अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति की दृष्टि से रक्षा की जायेगी और ऐसे कानून या व्यवस्था का निर्माण नहीं किया जायेगा जिससे उनकी इन बातों पर विरोधी असर या दबाव पड़े।''

मैं अपनी बात समझाऊंगा। मान लीजिये किसी इकाई में विभिन्न सम्प्रदाय के लोग रहते हैं, अलग-अलग लिपियों का व्यवहार करते हैं, और वह इकाई यह कानून बनाने का प्रयत्न करती है कि लिपि अनेकों के बदले एक होनी चाहिए। मैं यह अनुभव करता हूं कि इकाई के लिए यह जरूरी हो सकता है कि एक लिपि जारी और घोषित करने का कानून बनाया जाये जिससे स्वयं इकाई को लाभ हो सके। अब अगर बुनियादी अधिकार का कानून उसे ऐसा करने का अधिकार नहीं देता, तो मेरे ख्याल में इकाई के हित में हानि पहुंचेगी। मैं यह नहीं कह सकता कि खण्ड की भाषा क्या हो जिसके अनुसार ऐसा कानून विघोषित किया जायेगा जिससे एक लिपि द्वारा इकाई के सभी लोगों का हित हो सके। मेरी राय में यह मामला भी फंडामेन्टल राइट्स सब-कमेटी (बुनियादी अधिकार उप-समिति) को दे देना चाहिए, क्योंकि यह बुनियादी चीज है। अल्पसंख्यकों को अधिकार होना चाहिए; पर साथ ही इकाई को भी ऐसा अधिकार होना चाहिए; कि वह ऐसा कानून घोषित कर सके कि सारे प्रान्त के लिए एक लिपि होनी चाहिए। इसलिए मैं समझता हूं कि इस मामले पर फंडामेन्टल राइट्स सब-कमेटी (बुनियादी अधिकार उप समिति) द्वारा विचार किया जाना चाहिए या सरदार जी द्वारा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** अध्यक्ष महोदय, मैं आपका ध्यान खण्ड 18 के उपखंड (2) की ओर खींचना चाहता हूं जो इस प्रकार है:

चाहे धार्मिक आधार पर परिगणित अल्पसंख्यक हों या साम्प्रदायिक अथवा भाषा-भेद के ऊपर; या उसके राज्य की शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं में प्रवेश पाने में कोई भेदभाव नहीं होगा न उस पर कोई धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से लादी जायेगी। इस खण्ड में धार्मिक शिक्षा का हवाला दिया गया है। खण्ड 16, भी धार्मिक शिक्षायें अनिवार्य रूप से भाग लेने का हवाला है जो इस समादरणीय सभा द्वारा एडवाइजरी कमेटी को सौंपा जा चुका है जो उस पर विचार करेगी।

महाशय, मेरा निवेदन हैं कि इस खण्ड के अन्य उपखण्ड भी वैसे निरीह कठिनाईहीन नहीं हैं जैसे ऊपर से मालूम होते हैं।

उदाहरण के लिए उपखण्ड (1) को लीजिए जो लिपियों के बारे में हैं। कुछ

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

लोगों ने आसामी भाषा और लिपि सीखी है; पर हाल में उन पर रोमन लिपि लादी गयी है और अब उनमें से बहुत से हिन्दी-लिपि (देवनागरी) अपनाने को तैयार हैं। यदि उपखण्ड ज्यों का त्यों रहा तो वे इसे अपना न सकेंगे।

फिर उपखंड 3 (ख) को लीजिए, यदि यह ज्यों का त्यों रहता है तो वह समुचित सहायता के विभाजन में गम्भीर हस्तक्षेप करता है। इस प्रकार कुल मिलाकर मेरा ख्याल है कि उपखण्डों को इकट्ठे निबटाने के बदले यह अधिक बुद्धिमानी होगी कि पूरा खण्ड 18 एडवाइजरी कमेटी (परामर्श समिति) को सौंप दिया जाये।

***श्री राजकृष्ण बोस** (उड़ीसा : जनरल): मेरा सुझाव है कि सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित और श्री मुंशी द्वारा समर्थित खंड 18 इसी समय विचार के लिए ले लेना चाहिए और सभा को उस पर फैसला कर लेना चाहिए, ऐसा प्रतीत होता है कि इस तरह के खण्डों को एडवाइजरी कमेटी के सुपुर्द करने की बात जोर पकड़ गयी है और यहां कोई फैसला न करने का निश्चय-सा हो गया है। पर हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि यह खंड कमेटी से पास होने के पहले दो कमेटियों से पास हो चुके हैं, अर्थात् माइनोरिटीज राइट्स सब-कमेटी (नाबालिग अधिकार उप-समिति) और फंडामेन्टल राइट्स सब-कमेटी (बुनियादी अधिकार उप-समिति) द्वारा। जिस खंड 18 पर हम इस समय विचार कर रहे हैं वह इतना सीधा और हानि-रहित है कि वास्तव में इसे फिर एडवाइजरी कमेटी के पास वापस भेजने की जरूरत ही नहीं है। इससे तीन सब-कमेटियां (उप-समितियां) सम्बद्ध हैं— एक तो भाषा, लिपि और संस्कृति की रक्षा के सम्बन्ध में है और जिसमें कहा गया है कि ऐसे विधान नहीं बनाये जाने चाहिए जिससे इन पर दबाव या विरोधी प्रभाव पड़े। यदि हम श्री दत्त के कथनानुसार सारे भारत में एक लिपि बनाना चाहते हैं, तो इससे कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं और जो भी इकाई सामान्य लिपि सारी इकाइयों के लिए रखना चाहती है, उसे उपखंड के रखने पर कठिनाइयों का सामना करना होगा

मेरा विरोध इस बात पर है कि मैं उपखंड को ज्यों का त्यों रखे जाने के पक्ष में हूं क्योंकि अगर आज आप भाषाओं या लिपियों के नष्ट करने का सवाल उठाते हैं और ऐसे समय पर अब आप स्वतंत्र भारत का पहला ही विधान बना रहे हैं, तो इससे कितनी ही उलझनें, कठिनाइयां और गलतफहमियां हो सकती हैं और ऐसे समय पर जबकि हम कितनी ही कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं, हमें नहीं कठिनाई को आमंत्रित नहीं करना चाहिए। इसलिए हमें पहला उपखण्ड ज्यों का त्यों रखना चाहिए उसके बाद उपखंड 3 (क) इस प्रकार पढ़ा जाता है:

> ''कोई भी अल्पसंख्यक जाति चाहे वह धर्म, सम्प्रदाय का आधार रखती हो या भाषा का, किसी भी इकाई में अपनी पसन्द की शिक्षा संस्था स्थापित और संचालित कर सकती है।''

महाशय, यह ऐसा अधिकार है जिसे कोई भी देश अपहृत नहीं कर सकता और न उसे करना ही चाहिए और सभी विधानों को अल्पसंख्यकों का यह अधिकार स्वीकार कर लेना चाहिए। यह एक ऐसी आसान बात है कि इसे फिर एडवाइजरी कमेटी के पास सुपुर्द करने की जरूरत नहीं है। उपखंड (3) (ख) इस प्रकार पढ़ा जाता है:

> ''राज्य स्कूलों को सहायता देते समय अल्पसंख्यकों द्वारा व्यवस्थित शिक्षा-संस्थाओं के प्रति कोई भेदभाव न करेगा चाहे वह (अल्पसंख्यक) धर्म के आधार पर बने हों या सम्प्रदाय अथवा भाषा के।''

यह सवाल भी बहुत सरल है। यदि कोई अल्पसंख्यक जाति अथवा स्कूल किसी इकाई या संघ के भाग में खोलना चाहती है, तो निश्चय ही आप उसे रोकने नहीं जा रहे हैं; न ऐसे कानून बनाने जा रहे हैं जिनसे वे इस साधारण अधिकार से वंचित हो जायें। अगर आप ऐसा करेंगे तो आपका अल्पसंख्यकों की रक्षा करने का दावा एक स्वांग मात्र रह जायेगा। इसलिये मैं नहीं समझता कि ऐसे आसान खंड अर्थात् खंड 18 अपने सभी उपखंडों के साथ एडवाइजरी कमेटी को वापस सुपुर्द क्यों किया जाये। अवश्य ही सदस्यों में से एक महाशय ने ऐसी आपत्ति खड़ी की है कि अल्पसंख्यकों सम्बन्धी मामलों का विचार तब तक के लिये टाल देना चाहिए जब तक कि हमें इसके बारे में पाकिस्तानियों के विचार न मालूम हो जायें और हम यह न देख लें कि वे अपने क्षेत्र के अल्पसंख्यकों को क्या-क्या अधिकार दे रहे हैं। महाशय, यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि आज जो मुस्लिम लीगी की तरह भारत की स्वतंत्रता का विरोध करते हैं और उसमें विलम्ब करने की चाले चलते हैं और चाहते हैं कि सब कुछ नष्ट हो जाने तक के लिए हमारे कार्य रुके रहें या उनके फैसले तक हम रुके रहें, तब तो हमें अनिश्चित काल तक रुके रहना पड़ेगा। उदाहरण के लिए, अगर वे इन बातों का फैसला करने में जून सन् 1948 ई. तक का समय गुजार दें, तो क्या हमें ऐसे साधारण और सीधी बात पर अपना निश्चय टालना चाहिए? मेरा ख्याल है कि यह तो हमारे लिए एक मूर्खता की बात है कि ऐसे मामलों में अपना फैसला टालते रहें। इसलिए सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित और श्री मुंशी द्वारा संशोधित खंड 18 सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाना चाहिए।

***डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, अध्यक्ष महोदय, मैं मानता हूं कि इन संशोधनों से,—श्री मुंशी तथा श्री त्यागी दोनों ही के संशोधनों से—बहुत आश्चर्य में हूं। मेरी अर्ज है कि इन लोगों ने कोई कारण नहीं बताया है, कि यह 18वां खंड कमेटी के विचार के लिए क्यों वापस भेजा जाये। इस प्रस्ताव की पुष्टि का एकमात्र कारण, किसी के ख्याल में आ सकता है, यही है कि अल्पसंख्यकों

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

के अधिकार परस्पर सम्बन्धित (रिलेटिव) होने चाहिएं अर्थात् हिंदुस्तान के इलाके में अल्पसंख्यकों को जो अधिकार हम देना चाहते हैं, उनका निश्चय करने से पहले, हमें रुककर देख लेना चाहिए कि 'पाकिस्तान असेम्बली (परिषद्)' द्वारा अल्पसंख्यकों को क्या अधिकार दिये जाते हैं। श्रीमान्, सविनय अर्ज है कि मैं इस प्रकार के विचार का समर्थन नहीं कर सकता। अल्पसंख्यकों के अधिकार, पूर्ण अधिकार होने चाहिएं। वे इस प्रकार के किसी विचार के आधीन न रहने चाहिएं कि दूसरा पक्ष अपने अधिकार-क्षेत्र के अल्पसंख्यकों के लिए क्या करने जा रहा है। यदि हमें मालूम हो कि दूसरे राज्य के इलाके के किन्हीं अल्पसंख्यकों का, जिनमें हमारी दिलचस्पी है, वही अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं, जो हमने अपने इलाके में अल्पसंख्यकों को प्रदान किये हैं, तो राज्य इस मामले की बात अपने दूत के द्वारा उठा सकता है और गलती दूर करा सकता है। किन्तु मेरा ख्याल है कि इसकी परवाह न करते हुए कि दूसरे क्या करते हैं, हमें वही करना चाहिए जो हमें अपनी समझ से उचित प्रतीत हो और मेरा व्यक्तिगत विचार है कि खंड 18 में जिन अधिकारों का उल्लेख किया गया हैं, वे ऐसे अधिकार हैं कि जिनको बिना किसी बात का ख्याल किए प्रत्येक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय पाने का दावा कर सकता है। इनमें हमने जो पहला अधिकार दिया है, वह उनका अपनी भाषा, अपनी लिपि अपनी संस्कृति के प्रयोग का अधिकार है। हमने स्पष्ट कह दिया है कि राज्य की शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश के मामले में, ''धर्म, भाषा, आदि के आधार पर कोई भेदभाव न बरता जायेगा''। हमने कहा है कि ''किसी अल्पसंख्यक समुदाय के अपने इच्छानुसार कोई भी शिक्षा-संस्था स्थापित करने का कोई रुकावट न होगी''। उसमें यह भी व्यवस्था शामिल है कि जब कभी भी, राज्य, अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित स्कूलों या अन्य शिक्षा-संस्थाओं को (आर्थिक) सहायता देने का निश्चय करेगा, तो ऐसी सहायता प्रदान करने में धर्म, सम्प्रदाय या भाषा के आधार पर कोई भेदभाव न रखा जायेगा। श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि 18वें खंड में उल्लिखित इन अधिकारों पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। कुछ भी हो, इस क्लाज को कमेटी के विचार के लिए वापस भेजे जाने के प्रस्ताव का समर्थन करने वाले किसी भी व्यक्ति ने ऐसे कोई तर्क पेश नहीं किये हैं जिनसे यह समझा जाये कि किसी अल्पसंख्यक समुदाय को दिये जाने के लिए ये अधिकार अधिक हैं अथवा वे अल्पसंख्यकों को प्राप्त ही न होने चाहियें। अतएव मुझे यह बहुत ही खेदजनक प्रतीत होता है कि इन अधिकारों की व्यवस्था प्रस्तुत करने वाली तीन कमेटियों का परिश्रम यों ही बेकार चला जाये, केवल इसलिए कि कुछ कारणों से लोग इस मामले को कमेटी के विचारार्थ वापस करना चाहते हैं। मुझे नहीं मालूम कि मेरे मित्र श्री मुंशी को, उपखंड (2) के वर्तमान स्वरूप पर आपत्ति है; किन्तु यदि इस उपखंड को कमेटी के विचारार्थ वापस भेजना आवश्यक हो, तो इसमें मुझे कोई आपत्ति न होगी। यह उपखंड इसलिए कमेटी के विचारार्थ वापस भेजा जा सकता है, क्योंकि मैं समझता हूं कि हमने उसका विषय राज्य की शिक्षा-संस्थाओं तक के लिए ही सीमित रखा है और उन शिक्षा-संस्थाओं के लिए कुछ

नहीं कहा, जो राज्य से केवल आर्थिक सहायता प्राप्त करती हों। यदि इस बात को और स्पष्ट कराने की आवश्यकता है, तो यह विषय वापस भेजा जा सकता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि हम किन्हीं कारणों से उप-खंड (2) को कमेटी के विचारार्थ वापस करना चाहते हैं, तो वही कारण बताकर पूरा खंड ही (18वां) कमेटी को वापस भेज दिया जाये। इसलिए मेरी अर्ज है कि उपखंड (2) को छोड़कर, शेष-खंड अपने वर्तमान रूप में स्वीकार किया जाये और यदि आवश्यक हो, तो उपखंड (2) कमेटी के विचार के लिए वापस भेज दिया जाये।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** महाशय, जब मैं कुछ समय पहले बोल रहा था तो मैंने कहा था कि मैं बुनियादी अधिकारों के खंड 18 का स्वागत करता हूं, क्योंकि यह पहला ही समय होगा जब अल्पसंख्यक इस बात से प्रसन्न होंगे कि उन्हें कुछ निश्चित अधिकार प्राप्त हुए हैं। मैं इस सवाल पर बोल रहा था कि अल्पसंख्यक कहा किसको जायेगा जिसके बारे में मुझे अपने सन्देह हैं। पर मुझे आशा है कि आगे के वाद-विवाद में वह स्पष्ट हो जायेंगे। पर किस रूप में यह खंड है उसका मैं स्वागत करता हूं। मैं यह दिखाना चाहता हूं कि मिदनापुर जिले में उड़ियों की आबादी बहुत अधिक खंडित कर दी गई है—यहां तक कि आज हम मर्दुमशुमारी में वहां उड़ियों का नामोल्लेख तक नहीं पाते। सन् 1891 ई. में वहां उड़ियों की संख्या 6 लाख थी, सन् 1901 ई. में तीन लाख हुई और सन् 1911 ई. में वह दो लाख से भी कम हो गई। सन् 1921 ई. में वह घटकर 1 लाख 40 हजार हो गई और सन् 1931 ई. में तो वह 45,000 पर पहुंच गई।

उड़ीसा के दक्षिणी भाग में भी यही हुआ है। उत्कल यूनियन कान्फ्रेंस ने 40 वर्ष से भी अधिक समय से उड़ीसा को पृथक् प्रान्त बनाने का आन्दोलन किया था तो केवल इसलिए कि उसे अपने अल्पसंख्यक अधिकार मिल जायें, क्योंकि अल्पसंख्यक रूप में दूसरे प्रान्तों में सम्मिलित रहने में उनकी रक्षा नहीं थी; और जब उन्हें पृथक् प्रान्त मिला तो वे बड़े प्रसन्न हुए थे कि अब उन्हें कुछ निश्चित अधिकार मिल गये। अब प्रश्न भाषा का उठ खड़ा हुआ। उड़ीसा के छः जिलों में केवल एक ही ऐसा है गंजाम जिसमें भाषा-सम्बन्धी अनेक कठिनाइयां हैं। सन् 1906 ई. का 'विजगापटम जिला गजेटियर' लिखता है:

> 'इस जिले की भाषा सचमुच एक आफत है। गंजाम में 1000 पीछे 940 मनुष्य पर में अपनी तेलगु भाषा बोलते हैं, 14 मनुष्य उड़िया बोल लेते हैं, 9 खोंद, गुदाबा और 5 हिन्दुस्तानी। पर इतनी ही संख्या (1000) के पीछे एजेन्सी में 461 व्यक्ति उड़िया, 204 खोंद, 180 तेलगु, 56 सवारा, पोरोजा, 23 गदाका, 11 कोया, 3 हिन्दुस्तानी, 3 गोंडी और 5 लवादी, बस्तरी, हिन्दी छत्तीसगढ़ी आदि।'

हमारे प्रान्त में भाषा-सम्बन्धी कठिनाई का अनुभव इसलिए किया गया कि कुछ निवासी आन्ध्र हैं और वह इस बात का दावा कर रहे हैं कि उनके बच्चों

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

को उन्हीं की मातृभाषा के माध्यम द्वारा कॉलेज तक की शिक्षा दी जानी चाहिए। और इसका स्पष्ट निर्णय होना चाहिए। मुझे आशा है कि इस प्रकार के खंड द्वारा यह कठिनाइयां दूर हो जायेंगी और हमारी संस्कृति इन जगहों में अक्षुण्ण रहेगी जहां उड़िया अपने प्रान्त के बाहर रह जायेंगे, और इसी प्रकार इन अन्य लोगों की संस्कृति भी जो उड़ीसा में रह जायेंगे, ठीक तौर पर सुरक्षित रहेगी। पर मैं यह जानना चाहूंगा कि हमारे प्रान्त की भाषा क्या होगी और इन विभिन्न आदिम निवासियों की भाषा क्या होगी जो प्रान्त में बसते हैं। मैं कह चुका हूं कि आदिम वासी कितनी ही बोलियां बोलते हैं। कुछ आदिवासी कार्यकर्त्ताओं का दावा है कि इनकी भाषा का समादर होना चाहिए। उड़ीसा में अगर हम प्रत्येक भाषा का समादर करने लगें तो प्रान्तीय सरकार के लिए शासन चलाना बहुत कठिन हो जायेगा।

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त, जिन्हें इकाइयां ही सुलझा सकती हैं, मैं इस खंड 18 का स्वागत करता हूं जो हमारे सांस्कृतिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा करता है।

***अध्यक्षः** हमारे पास दो संशोधन हैं, जिनमें एक श्री मोहनलाल सक्सेना का है।

***श्री मोहनलाल सक्सेनाः** महाशय मैं अपना संशोधन वापस लेने की आज्ञा चाहता हूं।

(संशोधन सभा की आज्ञा से वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** अब श्री मुंशी का वह संशोधन है जिसके द्वारा उपखंड (2) को कमेटी को वापस सुपुर्द कर देने का प्रस्ताव किया गया है।

***माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेलः** मैं इसे स्वीकार करता हूं।

श्री मुंशी का संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधित खंड सभा के सम्मुख रखता हूं जिसमें उपखंड (2) और उपखंड (1) तथा उपखंड (3) (क) और (ख) भी सम्मिलित हैं।

संशोधित खंड स्वीकार हुआ।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि साढ़े बारह के करीब बज चुके हैं, इसलिए आज काम बन्द किया जाये और कल सुबह 9 बजे फिर बैठक हो।

तब असेम्बली (परिषद्) शुक्रवार 2 मई सन् 1947 ई. के सुबह 9 बजे के लिए स्थगित हुई।